भारतीय थार रेगिस्तान में पारम्परिक ज्ञान का भण्डार व उपयोग

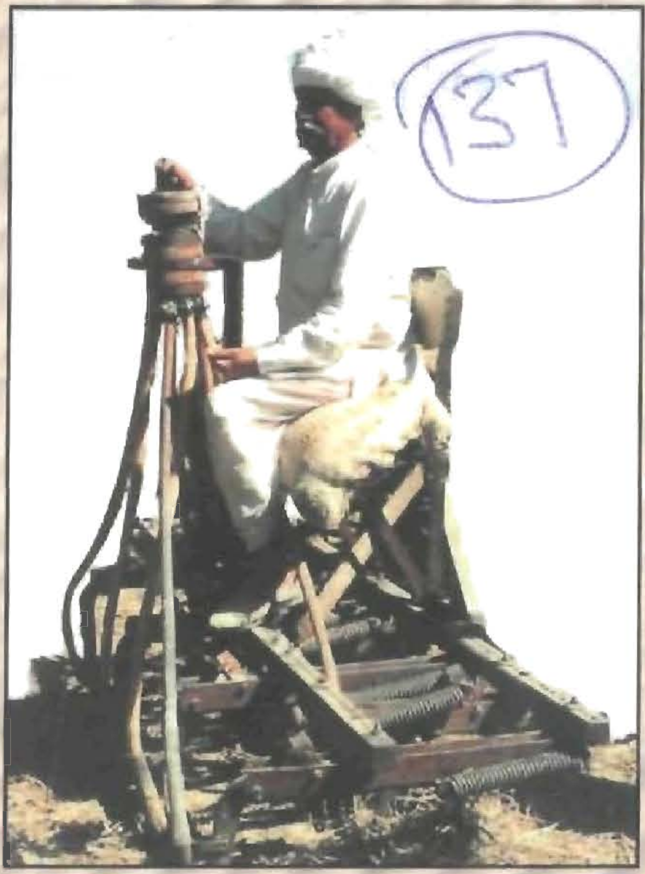

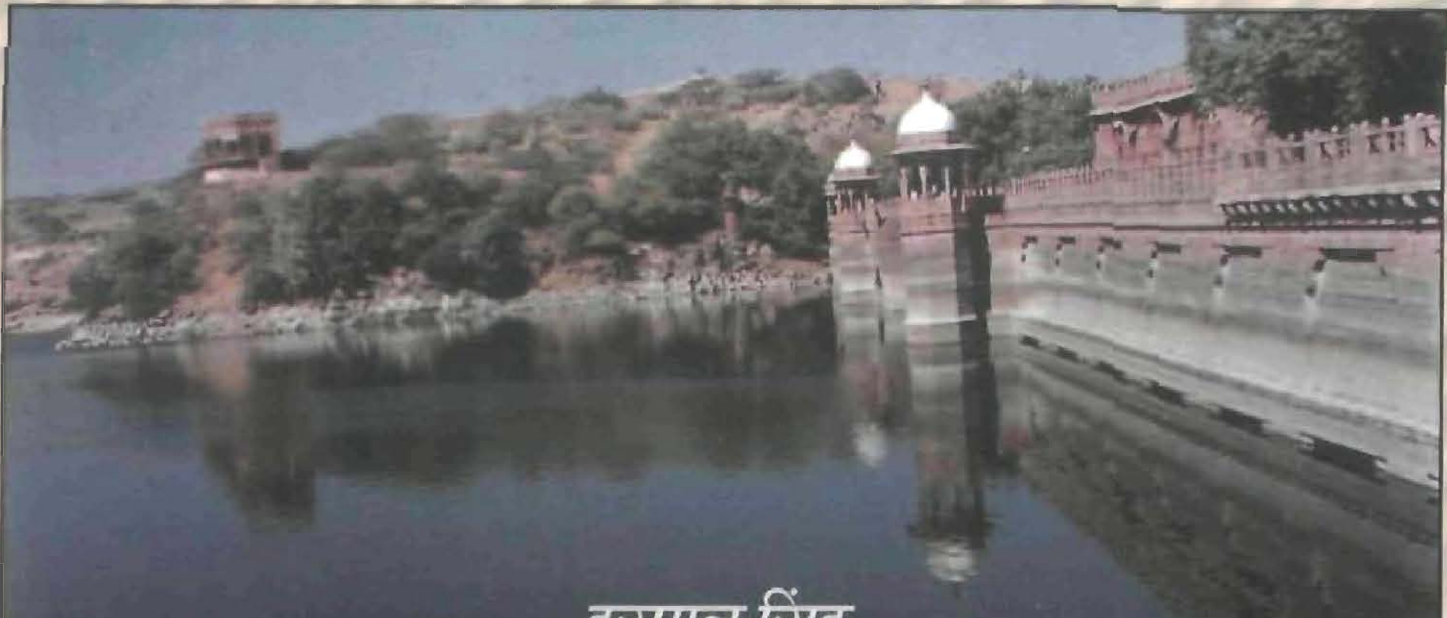

हरपाल सिंह
जबरदान कविया
प्रताप नारायण

भाकृअनुप
ICAR

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली)
जोधपुर – 342 003 (राजस्थान)

भारतीय थार रेगिस्तान में पारम्परिक ज्ञान का भण्डार व उपयोग

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली)
जोधपुर – 342 003 (राजस्थान)

संकलन एवं सम्पादन :

हरपाल सिंह	विभागाध्यक्ष एवं प्रधान वैज्ञानिक कृषि अभियांत्रिकी एवं ऊर्जा विभाग
जबरदान कविया	प्रधान वैज्ञानिक, कृषि अर्थ शास्त्र, प्रसार शिक्षा एवं प्रशिक्षण विभाग
प्रताप नारायण	निदेशक केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

योगदान कर्ता :

1.	श्री जबरदान कविया	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि प्रसार)
2.	डॉ. तेजेन्द्र कुमार भाटी	प्रधान वैज्ञानिक (शस्य विज्ञान)
3.	डॉ. दिनेश चन्द्र जोशी	प्रधान वैज्ञानिक (मृदा)
4.	डॉ. प्रताप नारायण	निदेशक, केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान
5.	डॉ. फरजाना परवीन	सहअनुसंधानकर्ता
6.	डॉ. बसन्त कुमार माथुर	वरिष्ठ वैज्ञानिक (पशु पोषण)
7.	डॉ. सुरेन्द्र कुमार वर्मा	वरिष्ठ वैज्ञानिक (कीट विज्ञान)
8.	डॉ. सतीश कुमार कौशिश	प्रधान वैज्ञानिक (पशु उत्पादन एवं प्रबन्ध)
9.	डॉ. सुरेश कुमार	प्रधान वैज्ञानिक (आर्थिक वनस्पति शास्त्र)
10.	डॉ. हरपाल सिंह	प्रधान वैज्ञानिक (कृषि संरचना एवं प्रसंस्करण अभियांत्रिकी)
11.	डॉ. हरी लाल कुशवाहा	वैज्ञानिक (कृषि यंत्र एवं शक्ति)
12.	डॉ. रामपाल जांगिड़	प्राध्यापक (शस्य विज्ञान) कृषि अनुसंधान केन्द्र, मन्डोर

प्रकाशन : फरवरी, 2004

केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान

(भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली)

जोधपुर 342 003 (राजस्थान)

प्रस्तावना

भारतीय शुष्क क्षेत्र, जिसका क्षेत्रफल 31.71 लाख हैक्टेयर है, पश्चिमी राजस्थान, उत्तरी गुजरात, दक्षिणी पश्चिमी हरियाणा एवं पंजाब और आन्ध्र प्रदेश एवं कर्नाटक राज्य के कुछ हिस्से में फैला हुआ है। इसका अधिकतर भाग (61.8 प्रतिशत) राजस्थान के पश्चिमी भाग में स्थित है, जिसके अर्न्तगत 12 जिले आते हैं। इसे भारतीय थार रेगिस्तान के नाम से जाना जाता है। इस क्षेत्र की जलवायु विषम है, यहाँ वार्षिक वर्षा 100 – 450 मी. मी. अत्यंत अनिश्चित एवं असमान होती है। गर्मियों में उच्च तापमान, तेज हवाओं/आँधियों के कारण रेतीली मिट्टी का क्षरण, एक स्थान से उड़कर दूसरी जगह इकट्ठी होकर ढ़ेरों का रूप धारण करती है। पानी के अभाव और कृषि उत्पादन की कमी से यह क्षेत्र अधिकतर सूखा और अकाल के साये से घिरा रहता है। थार रेगिस्तान में जल की सदैव ही विकट समस्या रहती है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है के चरितार्थ स्वरूप मरूस्थलवासियों ने वर्षा जल के संचय, इसके संग्रहण व संरक्षण के अनोखे विकल्प ढूंढ़ निकाले हैं जो कि किलों व पुरानी हवेलियों में आज भी वर्षा जल संग्रहण के आकर्षण का केन्द्र हैं।

पानी के अभाव में सघन खेती करना इस क्षेत्र के लिये न तो तर्क संगत था ना ही सम्भव । अतः जल संचय के साथ पशुधन – वनस्पति आधारित खेती करने की क्रियाओं के पारम्परिक ज्ञान को पीढ़ी दर पीढ़ी विकसित कर मरूस्थलवासी अपना जीवन यापन करते आये हैं। सदियों का यह अनुभव इन मरूस्थलवासियों में दृढ़ विश्वास पैदा करता गया और यही पारम्परिक ज्ञान इस सदी में भी जानकारी का आधारभूत स्रोत हो सकता है।

थार रेगिस्तान में पशुपालन ही मुख्य व्यवसाय रहा है। मरूस्थलवासी पशुपालन में पारम्परिक ज्ञान का सदुपयोग प्रजनन में, स्वास्थ सुधार में तथा दूध उत्पाद्न में करते आये हैं । पशुपालन के लिये इस क्षेत्र की मूल्यवान वनस्पति का उपयोग विभिन्न बीमारियों का उपचार भी पारम्परिक ज्ञान के रूप में विकसित हुआ है । इस प्रकार यहाँ के किसान, पशु पालकों व कारीगरों के अनुभवों को अपनाते रहे हैं ।

कृषि और चारागाह उत्पादन में वर्षा जल का संग्रहण, संग्रहित नमी पर खेती करना, भूमि का उपजाऊपन बनाये रखना व विभिन्न पौध संरक्षण के उपाय, भूमि जोतने, बुवाई एवं कटाई आदि में काम आने वाले विभिन्न यंत्र तथा भण्डारण की विभिन्न परम्परागत विधियॉ मूल्यवान साबित हुई हैं। पेड़ों व झाड़ियों के फलों को सब्जी, अचार आदि के रूप में प्रयोग में लिया जाता रहा है तथा विभिन्न व्यजंन

बनाये जाते रहे हैं जैसे पचकूटे की सब्जी (कैर, कुमट, सांगरी, गुन्दा, अमचूर), कैर का अचार, सांगरीयुक्त ढ़ोकली, आदि – आदि। अतः मरूस्थलवासी फसलों के साथ – साथ क्षेत्रीय वनस्पति उत्पादों का समावेश कर खाद्य पदार्थों की पौष्टिकता व स्वादिष्टता बनाये रखते आये हैं ।

मरूस्थल में पारम्परिक ज्ञान का अथाह समुद्र है । उस समुद्र रूपी ज्ञान के कुछ मोती हाथ लगे जिनका संकलन कर सम्पादित किया गया है ताकि आने वाले समय में यह पारम्परिक ज्ञान लुप्त न हो तथा सभी के उपयोग में आता रहे और उपयोगी बना रहे । इसी आधार पर सम्पादित करने का भागीरथ प्रयास इस प्रकाशन में किया गया है इस पारम्परिक ज्ञान के सम्पादन के पश्चात यह आशा की जाती है कि पाठक अपने ज्ञान को बढ़ायेगें तथा उसे अपनाकर भविष्य में अधिक से अधिक लोगों को बाटेगें । पाठकों की इस भावना को हम धन्य समझेगें ।

हरपाल सिंह
जबरदान कविया
प्रताप नारायण

प्राक्कथन

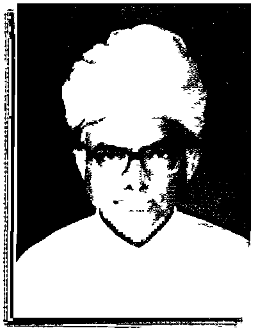

हमारे पूर्वजों के पास अनुभवों से प्राप्त ज्ञान का विशाल भण्डार रहा है चाहे वह कृषि हो, बीमारियों का उपचार हो या मौसम संबंधी भविष्यवाणी। अनुभवी पूर्वजों ने अपने अनुभवों से पारम्परिक ज्ञान आधारित विज्ञान की संरचना प्रत्येक क्षेत्र में की। आज भी अनुभवी किसान की आँखें पूर्वजों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर कैसी मिट्टी है, फसल कैसी होगी, इस वर्ष जमाना (वर्षा) कैसा होगा सभी विभिन्न चिन्हों से बता देती हैं। ज्ञान का ऐसा अथाह सागर पीढ़ी दर पीढ़ी मौखिक रूप से चला आ रहा है। ऐसे ज्ञान को लेखनीबद्ध कर संचित करने का कार्य एक भागीरथ प्रयास ही कहा जा सकता हैं।

इसके प्रकाशन से शुष्क क्षेत्र के किसानों, पशुपालकों एवं क्षेत्रीय कारीगरों का पारम्परिक ज्ञान जन–जन तक पहुँचेगा तथा इस कार्य में लगे विशेषज्ञों, विस्तार कर्ताओं हेतु पथ प्रदर्शन का कार्य करेगा ऐसा मेरा विश्वास है। इस क्षेत्र में वर्षा जल संरक्षण, फसल उत्पादन, नमी संरक्षण, भण्डारण, कृषि यंत्रों, बीरानी बाड़ी, पशुओं की बीमारी का उपचार आदि का पारम्परिक ज्ञान अनुसंधान कर्ताओं को इन्हें उन्नत करने में सहयोगी साबित होगा।

पारम्परिक ज्ञान को लोगों से इकट्ठा कर संकलित करना एवं प्रकाशित करना एक दुर्लभ कार्य है इसके लिये मैं लेखकों तथा उन सभी वैज्ञानिकों, अधिकारियों व कर्मचारियों को हार्दिक शुभकामनाऐं एवं बधाई देता हूँ जो इसके प्रकाशन से जुड़े हैं।

दिनांक : 3 अगस्त, 2003

डॉ. नारायणसिंह माणकलाव
पद्म श्री एवं पद्म भूषण
संसद सदस्य (राज्यसभा, मनोनीत)

आभार

"भारतीय थार रेगिस्तान में पारम्परिक ज्ञान का भण्डार व उपयोग" का प्रकाशित होना इस क्षेत्र के पशुपालकों, कृषकों व कारीगरों के सहयोग से ही सम्भव हो पाया है जिन्होंने यहाँ की समस्याओं तथा परिस्थितियों में अपने अस्तित्व को बचाये रखने के लिये इस ज्ञान को स्वयं खोजा या पूर्वजो से विरासत में पाया है । अतः लेखक इन सभी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं।

लेखक भूतपूर्व निदेशक, काजरी जोधपुर डॉ. अमर सिंह फड़ोदा वर्तमान अध्यक्ष, कृषि वैज्ञानिक चयन मंडल, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली का हार्दिक आभार व्यक्त करना कर्तव्य समझते हैं जिन्होंने प्रारम्भिक काल में पारम्परिक ज्ञान संकलन परियोजना में अति रुचि दिखाते हुए पथ प्रदर्शन व दिशा निर्देश दिया, जिसके फलस्वरूप पारम्परिक ज्ञान को संचय करने में मदद मिली।

काजरी संस्थान के विभिन्न वैज्ञानिकों का पारम्परिक ज्ञान के संचय में सहयोग करने तथा वैज्ञानिक दृष्टि से परखते हुए लेखनीबद्ध करने के लिये लेखक धन्यवाद व्यक्त करते हैं।

श्रीमती मधुबाला चारण, सहायक निदेशक (राजभाषा), श्री नानूराम भामू, श्री भगवान सिंह कुंपावत, श्रीमती रजनी माथुर एवं श्री सूर्य शंकर पारगी द्वारा पारम्परिक ज्ञान के संकलन व सम्पादन करने में सहयोग के लिये धन्यवाद के पात्र हैं ।

सम्पूर्ण सामग्री का इस प्रकाशन के रूप में परिवर्तित करने में श्री नटवर लाल पुरोहित, श्री अमित सिंह, डॉ. हरी लाल कुशवाहा, श्री भंवर सिंह सोलंकी, श्री गंगा सिंह भाटी व श्री मंगल चन्द गोस्वामी का विशेष योगदान रहा है जिसके लिये लेखक इनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं ।

हरपाल सिंह
जबरदान कविया
प्रताप नारायण

विवरण तालिका

क्र.सं	विवरण	पृ.सं.
1	थार रेगिस्तान में पारम्परिक तरीकों से वर्षा जल का संग्रहण हरपाल सिंह, जबरदान कविया एवं प्रताप नारायण	1
2	थार रेगिस्तान में फसल उत्पाद्न के लिये नमी संग्रहण एवं क्षारीय – लवणीय भूमि सुधार के पारम्परिक तरीकें व ज्ञान जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह	16
3	उत्तर – पश्चिमी राजस्थान में सिमित जल उपयोग से तरबूज व खरबूजे की खेती की पारम्परिक विधि : बिरानी बाड़ी जबरदान कविया, सुरेन्द्र कुमार वर्मा एवं हरपाल सिंह	20
4	पश्चिमी राजस्थान में मेहन्दी की खेती की पारम्परिक विधि जबरदान कविया, सुरेन्द्र कुमार वर्मा एवं हरपाल सिंह	25
5	मरूस्थल में अधिक कृषि उत्पाद्न के लिये फसल चक्र का पारम्परिक ज्ञान जबरदान कविया, तेजेन्द्र कुमार भाटी एवं रामपाल जांगिड़	31
6	पारम्परिक एवं नवीन कृषि यंत्रों की उपयोगिता एवं क्षमता बढ़ाने में स्थानीय तकनीकी ज्ञान का योगदान हरपाल सिंह, जबरदान कविया एवं हरी लाल कुशवाहा	34
7	प्याज भण्डारण की सुरक्षित पारम्परिक तकनीकें जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह	38
8	थार रेगिस्तान में अनाज भण्डारण की पारम्परिक सुरक्षित विधियाँ हरपाल सिंह एवं जबरदान कविया	48
9	मरूस्थल में कैर के फलों का पारम्परिक उपयोग जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह	52
10	पश्चिमी राजस्थान में पारम्परिक भोज्य पदार्थ 'ढ़ोकली' बनाने की विधि जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह	56
11	पश्चिमी राजस्थान के पारम्परिक औषधीय पौधे सुरेश कुमार एवं फरजाना परवीन	58
12	मरूस्थल के पशुपालकों का पारम्परिक ज्ञान जबरदान कविया, सतीश कुमार कौशिश एवं बसन्त कुमार माथुर	61
–	शब्दावली	78

१ भारतीय थार रेगिस्तान में पारम्परिक तरीकों से वर्षा जल का संग्रहण

हरपाल सिंह, जबरदान कविया एवं प्रताप नारायण

थार मरूस्थल में कम वर्षा (वार्षिक औसत 100 – 450 मि. मी.) के साथ – साथ इसकी अनिश्चितता भी बनी रहती है। यह क्षेत्र हमेशा अकाल के साये में डूबा रहता है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है के चरितार्थ स्वरुप मरूस्थलवासियों ने वर्षा जल संग्रहण के अनोखे विकल्प खोज निकाले हैं । आश्चर्य की बात यह है कि गरीब से लेकर राजा महाराजाओं तक ने वर्षा जल संग्रहण के उत्कृष्ट तरीके खोजे हैं। वर्षा जल आधारित तरीके जैसे, टांका, नाडा, नाडी, खड़ीन, तलई, सर, सागर तथा समंद अपने आप में अनूठे पानी के स्रोत हैं और मनुष्यों, जीव जन्तुओं तथा पेड़ पौधौं की पानी की आवश्यकताओं को पूरा करने में इन स्रोतों की अहम भूमिका रही है। इन तरीकों को अपनाने में बहुत कुछ स्थान विशेष की भौगोलिक स्थिति, भूमि संरचना, वर्षा की मात्रा तथा भूजल आदि पर भी निर्भर किया है, जिनका विवरण इस अध्याय में प्रस्तुत है ।

भारतीय थार रेगिस्तान की सीमायें राजस्थान, हरियाणा, पंजाब तथा गुजरात राज्यों चित्र 1.1 में दर्शाये जिलों में फैली हुई हैं । इसका अधिकांश क्षेत्र (61.8 प्रतिशत) केवल राजस्थान में है। राजस्थान के 32 में से 12 पश्चिमी जिले इसके अर्न्तगत आते हैं जिसका क्षेत्रफल लगभग 2 करोड़ हैक्टेयर है, इस क्षेत्र की जलवायु विषम है (तालिका 1.1) ।

वर्षा के आधार पर इस क्षेत्र को चार भागों में बाँटा गया है (चित्र 1.2)

(i) > 400 मि. मी. वर्षा वाले क्षेत्र (पाली, झुंझुनू, सीकर)

(ii) 300 – 400 मि. मी. वर्षा वाले क्षेत्र (जोधपुर, नागौर, चुरू)

(iii) 200 – 300 मि. मी. वर्षा वाले क्षेत्र (श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, बीकानेर, बाड़मेर)

(iv) 100 – 200 मि. मी. वर्षा वाले क्षेत्र (जैसलमेर)

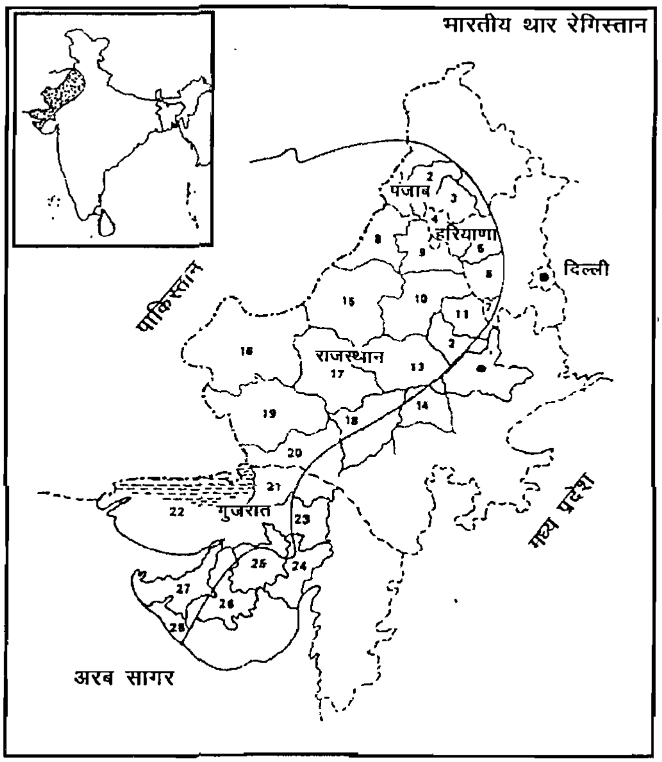

चित्र 1.1 : भारतीय थार रेगिस्तान का मानचित्र

I	पंजाब	:	1. फिरोजपुर, 2. फरीदकोट, 3. भटिन्डा,
II	हरियाणा	:	4. सिरसा, 5. हिसार, 6. भिवानी, 7. महेन्द्रगढ़
III	राजस्थान	:	8. श्रीगंगानगर, 9. हनुमानगढ़, 10. चुरू, 11. झुंझुनू, 12. सीकर, 13. नागौर, 14. अजमेर, 15. बीकानेर,16. जैसलमेर, 17. जोधपुर, 18. पाली, 19. बाड़मेर, 20. जालोर
IV	गुजरात	:	21. बनासकान्ठा, 22. कच्छ, 23. महसाना, 24. अहमदाबाद, 25. सुरेन्द्रनगर, 26. राजकोट, 27. जामनगर, 28. जुनागढ़

थार क्षेत्र में वार्षिक औसत वर्षा मात्र 100 – 450 मि. मी. होती है, जिसकी अनिश्चितता बहुत अधिक (विचलन गुणांक 45 से 75 प्रतिशत) है। अधिक तापमान और तेज हवाऐं चलने से जलवायु गर्म रहती है तथा पानी का सन्तुलन हमेशा विपरीत बना रहता है। फसलों के उत्पाद्न के लिये मात्र 7 – 10 सप्ताह का समय ही मिलता है जिसमें कभी – कभी कुछ फसलें जैसे बाजरा, मूंग, मोंठ, ग्वार इत्यादि हो पाती हैं अन्यथा मरूक्षेत्र में मनुष्य एवं पशु सिर्फ चारा, घासों और पेड़ों पर निर्भर करते हैं। यही कारण है कि पशुधन और मरू वनस्पति ही यहाँ का अस्तित्व है। पानी और अनाज के अभाव

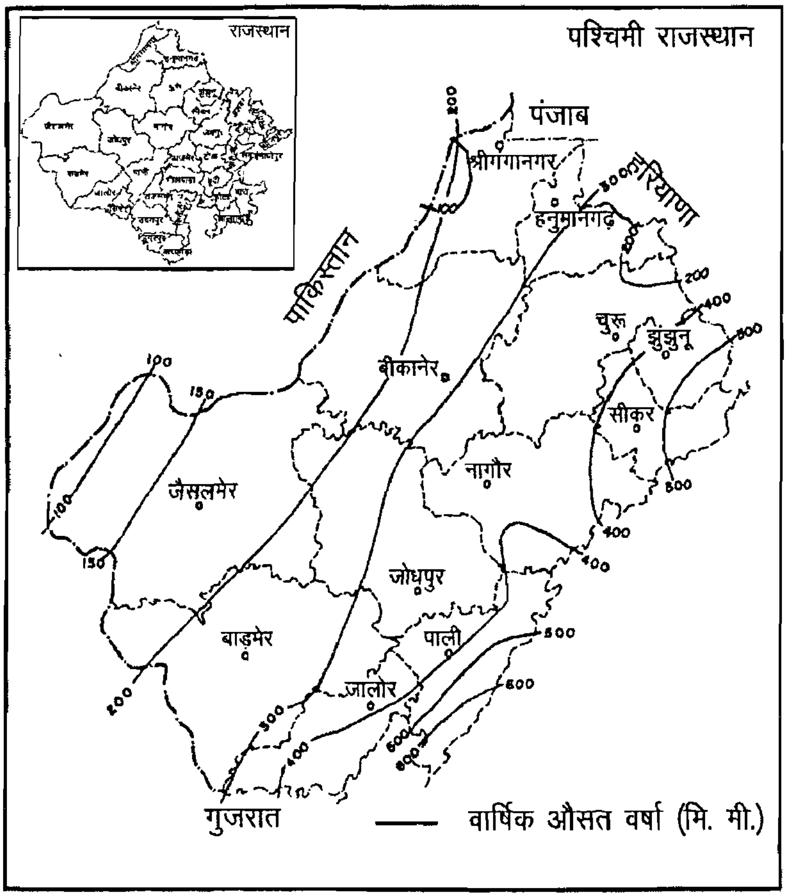

चित्र 1.2 : पश्चिमी राजस्थान की वार्षिक औसत वर्षा

में यह क्षेत्र अधिकतर सूखा और अकाल के साये से घिरा रहता है। जैसे – जैसे जोधपुर से पश्चिम या उत्तर – पश्चिम दिशा को जाते हैं अकाल और सूखे की दुर्भिक्षता बढ़ती चली जाती है। अनाज की दुर्भिक्षता के साथ – साथ पानी की त्रासदीता सदैव ही बनी रहती है। मारवाड़ी में अकाल पड़ने के बारे में कहावत है :

पग पूगल धड़ कोटड़े बाहं बायड़मेर ।
भूलो चूको जोधाणा, ठाहो जैसलमेर ।।

अर्थात अकाल बीकानेर के पूगल क्षेत्र में पांव पसारे हुए रहता है जबकि इसका धड़ कोटड़े (जैसलमेर व बाड़मेर के मध्य स्थित) में तथा बाहें बाड़मेर में फैली रहती हैं। जोधपुर में तो भूल – चूक से अकाल आता है परन्तु जैसलमेर में तो इसकी चर्चा सदैव रहती है।

उत्तरी – पश्चिमी राजस्थान के 12 जिलों में थार मरूस्थल अपना फैलाव लिये हुए है जहॉ एक आंकलन के अनुसार अकाल की दुर्भिक्षता की छाया एक शतक में कुछ इस प्रकार बनी रहती है:

7 काल, 27 जमाना, 63 कुरिया काचा ।
3 अकाल ऐसे हुए माँ – बाप न मिला पाचा ।।

अर्थात 100 वर्षों में से 27 वर्षों में सामान्य वर्षा होती है जिसमें आगामी वर्ष के लिये भी खाने के लिये अनाज का उत्पाद्न भरपूर होता है और पशुओं के लिये चारे का भी काफी उत्पाद्न होता है। 63 वर्षो में अनावृष्टि सम्भावित है। अनिश्चित वर्षा और समय पर वर्षा न होने से जनता को उत्पाद्न से सन्तुष्टि नहीं होती। कभी चारे का उत्पाद्न होता है तो कभी दलहन और बाजरे की फसल का। औसतन 7 वर्षों में अकाल छाया रहता है जिसमें बाजरा, मूंग, मोंठ, ग्वार आदि के उत्पाद्न पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिसमें 3 वर्षों में ऐसा दुर्भिक्ष अकाल सम्भव है जिसमें कमाई के लिये भी मनुष्यों को अपने घर – बार छोड़कर बाहर जाना पड़ सकता है और वापसी में अपने परिवार वालों से मिलना सम्भव नहीं होता।

थार रेगिस्तान में जल ही जीवन माना गया है। जल को अमृत तुल्य मानकर मरूस्थलवासी आदि काल से वर्षा के पानी की एक – एक बूंद का संचय करते आये हैं। आदिकाल में थार रेगिस्तान में आधुनिक साधनों की कमी होने से भूजल का दोहन बहुत कम होता था। पहले ऐसी विषम परिस्थितियों में मनुष्य तथा पशु दोनों को वर्षा के जल पर जीवनयापन करना पड़ता था। साधन विहीन गरीब तथा साधारण लोगों को जल के लिये जमीदारों व दानीजनों पर आश्रित होना पड़ता था।

मरूस्थल में जल का धरातल अधिक गहरा, खारा या फिर पीने योग्य नहीं होने के कारण इन्द्रदेव की दया होने पर वर्षा के पानी को अमृत तुल्य मानकर वर्ष भर के लिये संजोये रखते हैं। जल की अत्यल्पता बाड़मेर जिले के दूर – दराज के गाँवों में, जैसलमेर में, बीकानेर संभाग में तथा जोधपुर संभाग के कई गाँवों में बनी रहती है। जैसलमेर जिले में 1960 तक मेहमानों को दूध व घी पिलाना आसान होता था और जल पिलाना मुश्किल।

अंग्रेजी शासन में थार मरूस्थल के बहुत बड़े क्षेत्र में सर्म्पूण लोग गहरे कुओं व बावड़ियों से बैल व ऊँटों के द्वारा पानी खींचते थे जहाँ गरीब लोगों को रात – दिन इन्तजार करने पर नाम मात्र पीने का पानी उपलब्ध हो पाता था। ऐसी परिस्थितियों में लोग एक दूसरे के पूरक बनकर जीवनयापन करते थे। इस तरह जीवनयापन से जूंझते हुए थार मरूस्थलवासियों ने अपना साहस न खोकर विभिन्न उपाय कर वर्षा के पानी को संचय करने के अलग–अलग ढंग ढूंढ़ निकाले। इसी कारण अंग्रेजों के समय या उससे भी पहले बनाये गये जल संचय के साधन इस वैज्ञानिक युग में आज भी एक आदर्श बने हुए हैं।

जल का संकट बीकानेर, जैसलमेर व बाड़मेर जिलों में ज्यादा रहता है। इन क्षेत्रों में भूमिगत जल को संचय करने के अनूठे उपाय अपनाये जाते रहे हैं जैसे कोठा (चौरस हौद), कूँड़ियाँ व खेली जिनमें पानी भरकर वितरित किया जाता था। थार रेगिस्तान का बहुत बड़ा भाग हमेशा ही बरसात के पानी पर निर्भर होने के कारण जल सग्रंहण के विभिन्न तरीके अपनाये जाते रहे हैं जैसे टांका, तलई, नाडा – नाडियाँ, तालाब, खड़ीन, सागर, समंद आदि जो इन जिलों की संस्कृति से ही जुड़ गये। भौगोलिक स्थिति, जलवायु, वर्षा तथा भूजल का खारापन आदि के कारण अलग – अलग जिलों में वर्षा के पानी का संग्रहण भिन्न – भिन्न पारम्परिक तरीकों से किया जाता रहा है (तालिका 1.2)। जल संग्रहण के पारम्परिक तरीकों को दो भागों में बांटा जा सकता है :

भूमिगत जल आधारित : भूमिगत जल आधारित जल संग्रहण के तरीके जैसे कुआं, बावड़ी आदि सामान्यतः कृत्रिम तौर पर बनाये जाते हैं। इनकी गहराई भूमि जल स्तर पर निर्भर करती है। आज के युग में उथले तथा गहरे नलकूपों को भी इन्हीं पर लगाया जाता है। इनकी पानी देने की क्षमता इनके पुनः आवेशित कर सकने की क्षमता पर निर्भर करती है। जल का अधिक दोहन होने पर इनका जल स्तर नीचे गिरता चला जाता है जो कि इस समय चिन्ता का विषय बना हुआ है ।

वर्षा जल आधारित : इसके अर्न्तगत टांका, नाडा, नाडी, खड़ीन, तलई, सर, सागर, समंद आते हैं। भौगोलिक स्थिति, भूमि की संरचना, वर्षा की मात्रा तथा जल ग्रहण क्षेत्र के आकार के अनुसार स्रोतों का आकार निर्भर करता है। कम वर्षा के क्षेत्रों में जैसे जैसलमेर (200 मि. मी. वार्षिक औसत वर्षा) में टांका, नाडी और खड़ीन का प्रचलन है। खड़ीन उसी स्थान पर सम्भव है जहाँ जल ग्रहण क्षेत्र बड़ा तथा पथरीला हो ताकि वर्षा जल स्वबहाव के रूप में किसी बान्ध के जरिये निचले स्थान में रोका जा सके। जल की आवक यदि अधिक है तो खड़ीन के निचले भाग में पानी स्वतः ही चला जाता है।

इसी प्रकार 200 – 400 मि. मी. वाले वर्षा के स्थानों (जिलों) में नाडा, नाडी एवं तलई का प्रचलन अधिक है। इनका रख – रखाव सामूहिक तौर पर किया जाता है।

400 मि. मी. से अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में सर, सागर और समंद प्रचलित हैं। यह उन जिलों में प्रचलित हैं जहाँ जल ग्रहण क्षेत्र काफी बड़ा होता है और जमीन पथरीली होती है क्योंकि वहाँ से पानी बहकर एक जगह पर इकट्ठा हो सकता है। इन स्रोतों में इकट्ठा हुआ पानी पीने के साथ – साथ फसलों की सिंचाई में भी काम में लिया जाता है। पानी के इन स्रोतों में से सिंचाई के लिये नालियाँ निकाली जाती हैं।

1 – टांका

थार मरूस्थल में टांकों का प्रचलन सर्वाधिक व बहुत पुराने काल से होता रहा है। टांकों का निर्माण खेतों, घरों, गढों व क़िलों में बरसात के जल के संग्रहण के लिये किया जाता रहा है। टांके

आवश्यकतानुसार व आर्थिक सम्पन्नता के अनुरूप गरीब और सम्पन्नों के घरों व खेतों में बनाये जाते रहे हैं जो कि विषम परिस्थितियों में भी जीवित रखे हैं।

यद्यपि खेतों में बरसात के पानी का संग्रह करने की प्रथा टांका मरूस्थल के हर क्षेत्र में रही है लेकिन बीकानेर, बाड़मेर व जोधपुर संभाग में इसकी लोकप्रियता अधिक रही है। खेत में टांका ढ़लान पर बनाया जाता है जिससे पानी आसानी से टांके में जा सके। घरों के पास ऊँची जगह पर टांका बनाया जाता है ताकि आस – पास का गंदा पानी उसमें नहीं जा सके। छत के अभाव के कारण टांके गरीब व मध्यम तपके के लोगों में लोकप्रिय है। टांका प्रायः गोल आकार का ही बनाते हैं, परन्तु हवेलियों व किलों में चौकोर आकार का टांका भी बनाते हैं।

बीकानेर संभाग में किसान खलिहानों व खेतों में छोटे (3 मीटर गहरा व 2 मीटर व्यास) टांके बनाकर बरसात के पानी का संग्रह करते हैं इस प्रकार के एक टांके में लगभग 10,000 लीटर पानी का संग्रह किया जा सकता है और खेती का काम करते समय इस पानी को पीने के उपयोग में लिया जाता है। टांके की छत बनाने में अधिकतम पत्थर की पट्टियों का उपयोग किया जाता है इसलिये छत समतल बनाते हैं। लेकिन जहाँ पत्थर की पट्टियाँ उपलब्ध नहीं होती वहाँ ईंटों के प्रयोग से गोलाकार छत बनाई जाती है। गरीब तपके के लोग ऊपर से खुला टांका भी बनाते हैं और सूखी झाड़ियों/टहनियों से टांके को इस प्रकार ढ़कते हैं ताकि वाष्पीकरण कम से कम हो और टांके में बच्चे, जानवर न गिरें [चित्र 1.3 (अ)]।

बरसात के मौसम में टांकों के पानी का उपयोग कम किया जाता है तथा खाली होने पर नाडी या तालाब के जल से भर दिया जाता है और पानी गर्मी के मौसम के लिये सुरक्षित रखा जाता है। जिन गावों में कुएँ गहरे होते हैं वहाँ थोड़ा – थोड़ा पानी दोनों स्रोतों से उपयोग में लिया जाता है। कई जगहों पर तालाबों या गहरे कुओं के पानी का संग्रहण भी घर के टांकों में किये जाने की प्रथा है।

बीकानेर संभाग में जल की किल्लत विशेषकर चुरू व बीकानेर जिलों में हमेशा ही बनी रहती है। चुरू जिले में भूजल पीने योग्य नहीं होने के कारण वर्षा की बूंद – बूंद का संचय किया जाता है। यहाँ वर्षो पुरानी हवेलियों की छतों के पानी को संचय करके चौकोर टांकों (कुंड) में संग्रहण करते रहे हैं। थार मरूस्थल में पुराने व आर्दश टांके बने हुए हैं उनमें से जोधपुर किले में 500 वर्ष पुराना टांका आज भी एक आर्दश है [चित्र 1.3 (ब)], इसके अलावा चुरू, सीकर, बीकानेर जिलों के कई गाँवों, कस्बों व शहरों में सदियों पुरानी हवेलियों में आज भी टांके छत के पानी का संचय करने के लिये उपयोग में लिये जा रहे हैं। बीकानेर जिले की कोलायत तहसील के दासोड़ी गाँव में 200 वर्ष पुराना टांका एक नमूना है। जैसलमेर जिले के ऊजलाँ गॉव का टांका लगभग 113 वर्ष पुराना है जिसकी –

(अ) पारम्परिक कच्चा टाँका

(ब) छत से जोधपुर किले के टांके में वर्षा-जल का संग्रहण (सन् 1551-52 ई.)

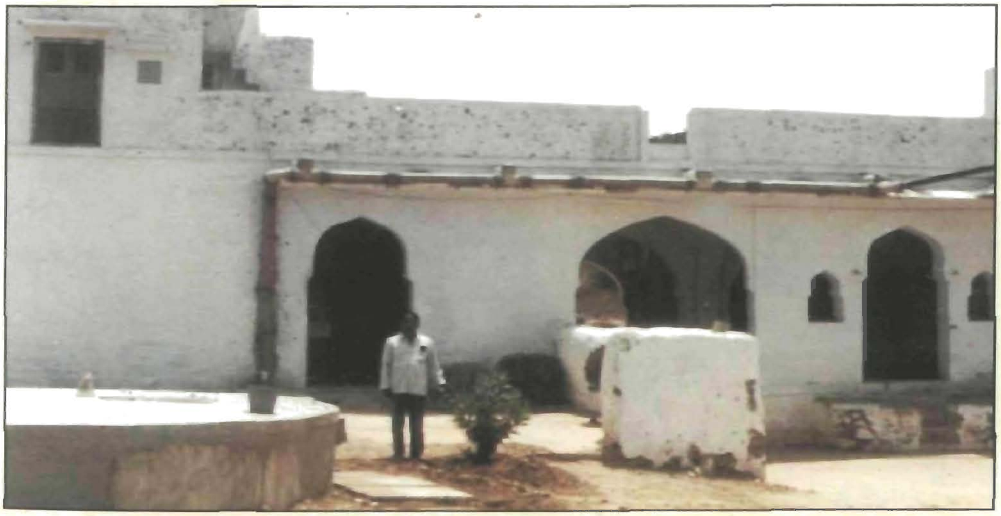

(स) राजीव गाँधी पेयजल योजना के अन्तर्गत काजरी तकनीकी आधारित टांका

चित्र 1.3 उत्तर – पश्चिम राजस्थान के पारम्परिक व उन्नत टाँके

तालिका 1.1 : थार रेगिस्तान के क्षेत्रों के मौसम सम्बन्धी आंकड़े

जिला	विवरण	माह												वार्षिक औसत
		जनवरी	फरवरी	मार्च	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सित.	अक्टू.	नव.	दिस.	
जोधपुर	वर्षा मि.मी.	3.0	3.7	3.7	8.5	15.1	34.9	133.7	125.9	48.5	6.6	3.0	2.7	389.3*
(1963–00)	वर्षा होने के दिन	0.3	0.4	0.4	0.5	1.1	2.0	5.7	6.0	2.8	0.6	0.2	0.1	20.1*
	वाष्पीकरण मि.मी.	4.6	6.0	8.8	12.2	14.8	13.5	9.1	6.8	7.2	7.0	5.4	4.5	8.3
	न्यूनतम आर्द्रता (प्रतिशत)	21.0	18.0	14.0	12.0	17.0	30.0	46.0	53.0	40.0	21.0	19.0	21.0	26.0
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	24.8	27.8	33.3	38.1	41.0	39.8	36.1	34.2	35.2	36.2	31.5	22.9	33.4
बीकानेर	वर्षा मि.मी.	5.5	7.9	11.1	6.8	23.2	25.0	87.8	57.4	26.0	19.4	3.0	0.7	273.8*
(1976–99)	वर्षा होने के दिन	0.7	0.9	0.9	0.6	1.4	1.8	4.9	3.0	2.2	0.6	0.1	0.0	17.1*
	वाष्पीकरण मि.मी.	3.9	5.4	8.7	13.4	14.7	18.7	13.3	11.0	10.8	8.6	5.6	3.8	9.8
	न्यूनतम आर्द्रता (प्रतिशत)	29.0	24.0	20.0	16.0	18.0	27.0	41.0	44.0	34.0	22.0	22.0	27.0	27.0
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	22.7	25.6	13.4	37.8	41.4	41.7	38.3	37.0	36.9	35.7	28.7	23.2	33.4
पाली	वर्षा मि.मी.	3.4	4.1	1.2	4.6	11.5	36.2	184.0	128.6	34.0	7.1	3.8	2.0	420.5*
(1978–99)	वर्षा होने के दिन	0.4	0.5	0.2	0.2	1.1	2.4	6.4	5.9	1.9	0.7	0.4	0.2	20.5*
	वाष्पीकरण मि.मी.	4.3	5.5	5.5	11.5	14.7	13.8	9.1	6.2	6.5	6.5	5.1	4.4	7.8
	न्यूनतम आर्द्रता (प्रतिशत)	27.0	22.0	18.0	14.0	19.0	31.0	54.0	63.0	47.0	26.0	26.0	26.0	31.0
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	25.7	28.3	33.7	39.1	41.9	40.8	35.7	33.7	35.5	36.2	31.9	27.5	34.2

जैसलमेर	वर्षा मि.मी.	5.1	2.1	0.5	2.6	9.4	18.8	48.0	13.3	21.3	3.0	0.0	0.5	124.6*
(1983–99)	वर्षा होने के दिन	0.4	0.4	0.1	0.4	0.8	1.2	2.6	3.1	1.1	0.2	0.0	0.1	10.4*
	वाष्पीकर.ा मि.मी.	3.9	5.4	8.7	13.4	14.7	18.7	13.3	11.0	10.8	8.6	5.6	-3.8	9.8
	न्यूनतम आर्द्रता (प्रतिशत)	14.0	25.0	24.0	23.0	25.0	34.0	47.0	49.0	39.0	25.0	23.0	27.0	30.0
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	24.1	27.3	33.5	39.4	42.3	41.2	38.5	36.7	37.2	36.7	32.0	25.2	34.5
बाड़मेर	वर्षा मि.मी.	2.8	3.6	2.5	1.6	6.6	19.4	87.3	113.1	33.7	3.6	0.6	1.1	275.9*
(1966–93)	वर्षा होने के दिन	0.2	0.3	0.2	0.1	0.5	1.1	4.0	4.4	1.6	0.1	0.1	0.1	12.7*
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	24.7	28.6	33.9	38.9	41.9	40.3	36.1	33.8	35.3	36.0	31.5	27.0	34.0
नागौर	वर्षा मि.मी.	5.7	5.5	5.0	3.5	11.8	35.2	128.8	126.6	50.8	5.6	1.1	3.8	383.4*
(1966–93)	वर्षा होने के दिन	0.6	0.6	0.5	0.3	1.1	2.4	6.3	6.3	2.8	0.4	0.1	0.3	21.7*
	अधिकतम तापमान, डीग्री से.	22.6	26.7	32.1	36.8	40.7	40.1	36.4	34.4	33.8	34.5	28.7	23.8	32.6

* पूरे एक वर्ष का योग

तालिका 1.2 : थार की भौगोलिक स्थिति एवं वर्षा जल संग्रहण के पारम्परिक तरीके

क्र. स.	पारम्परिक तरीका	जोधपुर	पाली	नागौर	जालोर	बाडमेर	जैसलमेर	बीकानेर	चुरू	सीकर	श्रीगंगानगर	हनुमानगढ	झुँझुनू
भूमिगत जल आधारित													
1	कुआँ												
	–अधिक गहरे (60 मी. से अधिक)	–	–	–	–	✓	✓	✓	–	–	–	–	–
	–मध्यम गहरे (30 – 60 मी.)	✓	–	✓	✓	–	–	–	✓	✓	✓	✓	–
	–कम गहरे (30 मी. से कम)	✓	✓	✓	✓	–	–	–	–	✓	–	–	✓
2	बावड़ी (गहराई 30 मी. तक)	✓	–	–	–	–	✓	✓	–	–	–	–	–
वर्षा जल आधारित													
1	टांका												
	–छत के पानी के लिये	–	–	✓	–	–	✓	✓	✓	✓	–	✓	✓
	– खेत के पानी के लिये	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓	✓
2	नाडा	✓	–	✓	–	–	–	–	✓	✓	–	–	–
3	नाडी (गहरी व गाँव के लिए सामूहिक)	✓	–	✓	✓	✓	–	–	–	–	–	–	–
4	खड़ीन	–	–	–	–	–	✓	–	–	–	–	–	–
5	तलई (गहरी व फैली हुई)	–	–	–	–	–	–	✓	✓	✓	–	–	–
6	तालाब (जल ग्रहण क्षेत्र व फैलाव ज्यादा)	✓	–	✓	✓	✓	✓	✓	–	–	–	–	–
7	सर	✓	–	–	–	–	✓	✓	–	–	–	–	–
8	सागर	✓	✓	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–
9	समंद	✓	✓	–	–	–	–	–	–	–	–	–	–

भराव क्षमता लगभग 11.5 लाख लीटर है तथा इस टांके का जल ग्रहण क्षेत्र 20 हैक्टेयर है। इसी प्रकार बाड़मेर जिले के कुछ गाँवों में सदियों पुराने टांके बरसात के पानी का संचय करने के जीवन्त उदाहरण हैं। जोधपुर जिले के फलोदी के पुराने किले व कस्बे में गुलेच्छा की हवेली में बरसात के पानी का संचय करने का आदर्श नमूना है। राजस्थान में अन्यंत्र किलों व गढ़ों में ऐसे अनेक टांके बने हुए हैं जो आज भी एक उदाहरण पेश करते हैं जैसे कि उदयपुर जिले में पहाड़ी पर बना सजनगढ़ का टांका जो लगभग 100 वर्ष पुराना है।

टाकों के परिपेक्ष में यह जानना जरूरी है कि जिन क्षेत्रों में फ्लोराइड़ तथा लवण युक्त पानी है वहाँ छत के पानी को टांकों में संचय कर सेवन करना ही कुबड़ेपन एवं जोड़ों के दर्द जैसी भयानक बिमारियों से निजात दिलाता है।

टांका बनाने में भिन्न – भिन्न सामग्रियाँ उपयोग मे ली जाती रही हैं। बीकानेर सम्भाग में पत्थर की उपलब्धता नहीं होने पर ईंट, चूने, मुर्रम, खड्डी, राख आदि का उपयोग सर्वाधिक होता रहा है। चिनाई व लिपाई – पुताई में राख, चूने व खड्डी का उपयोग भी किया जाता रहा है। टांका बनाने के लिये जमीन में आवश्यकतानुसार गढ्ढ़ा खोद दिया जाता है व अन्दर की तरफ पत्थर या ईंट से चिनाई की जाती है। आजकल सीमेन्ट की उपलब्धता होने से चिनाई व लिपाई का काम सीमेन्ट – बालू के मिश्रण से किया जाने लगा है। काजरी ने पक्के गोल टांकों की उन्नतिशील डिजाइन तैयार की है जो कि राजीव गाँधी पेयजल योजना में प्रचलित हुई [चित्र 1.3 (स)]। यह डिजाइन अब गाँवों में लोकप्रिय है।

2 – तलई

तलई बरसात के जल का संग्रहण करने का एक बहुत ही अच्छा व सदियों पुराना पारम्परिक तरीका है। तलई बीकानेर संभाग के लाड़नूँ, सुजानगढ़, रामगढ तथा चुरू के क्षेत्रों में बहुतायत से हैं।

तलई गाँव / शहर से थोड़ा दूर हटकर खेत में या सामूहिक जगह पर बनाते हैं। तलई लगभग 2 – 3 मीटर तक गहरी होती है जिसकी खुदाई के समय निकलने वाली मिट्टी व मुर्रम उसके चारों तरफ फैलाकर जल ग्रहण क्षेत्र (आगोर) का निर्माण किया जाता है। यह जल ग्रहण क्षेत्र तलई के चारों ओर, तीन तरफ या फिर एक तरफ भी हो सकता है। अतः तलई खोदते समय जगह का चयन इस प्रकार किया जाता है कि तलई में पानी की आवक में कोई रुकावट न आये। खुदाई से निकली चिकनी मिट्टी या फिर मुर्रम तलई की बाँध बनाने के काम में आती है। जल ग्रहण क्षेत्र का ढ़लान इस प्रकार रखते हैं कि मिट्टी या मुर्रम पानी के साथ बहकर तलई में नहीं आ पाये। तलई ऊपर से खुली रहती है और इसकी क्षमता आवश्यकतानुसार रखी जाती है। इसकी दीवारों की चिनाई ईंट तथा पत्थर, सीमेन्ट या खड़िया द्वारा की जाती है। तलई के पेंदे को भी ईंट या पत्थर द्वारा बनाया जाता है तथा उस पर

सीमेन्ट व बालू या चूने की लिपाई करके इस प्रकार मजबूत बनाते हैं कि जल का रिसाव नगण्य हो। जल ग्रहण क्षेत्र से तलई में पानी आने के लिये दीवारों में छिद्र (द्वार) रखे जाते हैं। तलई के पानी का उपयोग करने के लिये सीढ़ियाँ बनाई जाती हैं। पशुओं द्वारा पानी का वितरण करने के लिये एक तरफ पक्की रपट बनाते हैं जहाँ ऊँट, गधे, ट्रैक्टर तथा बैल आदि को खड़ा करके उस पर पानी से भरा मटका, बर्तन आदि को रखकर तलई के पानी को अन्यंत्र ले जाया जाता है। तलई की दीवारों को जमीन से इतना ऊँचा रखा जाता है कि छोटे – बड़े जानवर उसे लांघ नहीं सके।

तलई निजी हो या सामूहिक, इसकी सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है। जल ग्रहण क्षेत्र से मिट्टी का कटाव कम से कम हो तथा यदि थोड़ी बहुत मिट्टी पानी के साथ बहकर तलई में चली गई है उसे पानी के सूखने पर बाहर निकाल दिया जाता है। गर्मियों में आँधियों के कारण उड़कर आई बालू/रेत को वर्षा प्रारम्भ होने से पहले तलई से तथा जल ग्रहण क्षेत्र से हटा दिया जाता है।

तलईयों के पानी का उपयोग ज्यादातर पशुओं के लिये ही होता है लेकिन बीकानेर सम्भाग के कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ तलई का पानी आज भी मनुष्यों के उपयोग में आता है तलई के पानी को ऊँट, बैल व ट्रैक्टर आदि में लादकर घर के टांकों में संचय किया जाता है।

बीकानेर जिले के देशनोक कस्बे में भूतपूर्व महाराजा श्री गंगासिंह जी द्वारा निर्मित टाट तलई एक धरोहर के रूप में सुरक्षित है।

टाटतलई चौकोर आकार की है जिसकी लम्बाई व चौड़ाई 62.5 मीटर तथा गहराई 2.1 मीटर है। तलई तीन दिशाओं में लगभग 1 मीटर ऊँची दीवार से घिरी है तथा इसका क्षेत्रफल लगभग 1 एकड़ है और जल संग्रहण क्षमता लगभग 82 लाख लीटर है (चित्र 1.4)। इस तलई की चारों ओर की दीवारें ईंट व चूने के प्रयोग से बनी हैं तथा लिपाई भी चूने से ही की गई है। इसका तला भी ईंटो व चूने से बना है। कहते हैं इसके तले में ताबें की ईंटे लगी हैं इसलिये इसमें पानी ठण्डा व स्वच्छ रहता है। तलई से पानी भरने के लिये सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। एक दिशा में लगभग 6 मीटर चौड़ी व 9 मीटर लम्बी पक्की रपट बनी है जिसके द्वारा ऊँट, बैलगाड़ी, ट्रैक्टर आदि अन्दर तक जा सकते हैं और पानी को मटकों व बर्तनों आदि में भरकर अन्यंत्र ले जा सकते हैं। जल ग्रहण क्षेत्र से वर्षा का पानी 12 नालियों द्वारा तलई में आता है। इस तलई के जल ग्रहण का ढ़लान इस प्रकार है कि पानी केवल 3 तरफ से तलई में आता है। जल ग्रहण मुर्रम से पक्का बनाया गया है जिसकी पूर्व दिशा में लम्बाई 76.2 मीटर तथा पश्चिम व दक्षिण में प्रत्येक ओर 137.2 मीटर है तथा जल ग्रहण क्षेत्र का कुल क्षेत्रफल लगभग 5 हैक्टेयर है।

3 – नाडे, नाडियों तथा तालाबों में जल संग्रहण

नाडों व नाडियों में जल संग्रहण कम समय के उपयोग के लिये किया जाता है। इनका निर्माण खेतों में इस प्रकार किया जाता है कि किसान वर्षा के मौसम में खेती करते समय इस संग्रहित जल का उपयोग कर सकें। पशु आदि भी इसी पानी पर निर्भर रहते हैं।

(क) नाडा

चारागाहों, पड़ती व गोचर भूमि में, खेतों में, पथरीली जगहों या कई पहाड़ियों के आस – पास भराव की जगह को थोड़ा गहरा करके व उसकी मेंढ़ बांधकर वर्षा के पानी का संग्रहण मरूस्थल के प्रायः सभी गाँवों में प्रचलित रहा है। नाड़े का जल संग्रहण क्षेत्र 1 से 10 हैक्टेयर तक होता है। नाडों का पानी पशुओं के उपयोग में अधिक लिया जाता है। नाडा गोल व कम गहरा होता है। नाडे के आस – पास पेड़ पौधे पनपने से पशुओं को पीने के पानी के साथ – साथ गर्मी से भी राहत मिलती है और पानी का वाष्पीकरण रूकता है। नाडे निजी व सामूहिक रूप से बनाये जाते हैं तथा बीकानेर व जोधपुर संभाग में बहुतायत में पाये जाते हैं (चित्र 1.5)।

(ख) नाडी

नाडी का आकार नाडों से बड़ा होता है नाडी में संग्रहित वर्षा जल पूरे गाँव या आस – पास के कुछ गाँवों के प्रयोग के लिये होता आया है। नाडी की गहराई 6 – 8 मीटर तक हो सकती है। नाडी की गहराई के बारे में लोकप्रिय है कि एक अच्छी नाडी के अन्दर खड़े होकर अगर ढ़ोल बजायें तो बाहर आवाज बहुत कम सुनाई पड़ती है। नाडी के चारों ओर ऊँचा बांध बना दिया जाता है। नाडी के जल संग्रहण के लिये आगोर (जल संग्रहण क्षेत्र) 10 हैक्टयर से 100 हैक्टयर तक हो सकता है। नाडियाँ प्रायः ढ़लान में, जहाँ से पानी निकलता है वहाँ बनाई जाती हैं। नाडी के भरने पर फालतू पानी को निकालने का प्रावधान रखा जाता है जिससे पाल (बांध) क्षतिग्रस्त न हो ।

नाडियों में जल ग्रहण क्षेत्र से पानी के साथ बहकर आयी मिट्टी को ग्रामवासी श्रमदान करके पाल (बांध) पर डाल देते हैं। ऐसा करने से पाल भी मजबूत रहता है तथा नाडी की भराव क्षमता भी बराबर बनी रहती है। पारम्परिक तौर पर महिलायें श्रमदान से यह कार्य करती थी और कार्य पूर्ण होने पर सावन में भाई से एवज में धोती या साड़ी मिलती थी।

जल की स्वच्छता बनाये रखने के लिये जल ग्रहण क्षेत्र में किसी प्रकार की गन्दगी करना अपराध माना जाता है। नाडी में अन्दर स्नान नहीं किया जाता। स्नान के लिये पानी नाडी में से भरकर बाहर लाया जाता है और पाल (बांध) पर स्नान किया जाता है। नाडियों में जल वर्ष भर भरा रहने से जंगली जानवरों तथा प्रवासी पक्षियों की शरण स्थली बना रहता है।

चित्र 1.4 : बीकानेर जिले के देशनोक स्थित टाटतलई (सन् 1920 ई.)

चित्र 1.5 जोधपुर तहसील के झंवर गाँव का कडुम्बा नाडा

चित्र 1.6 भाटेलाई चारणा गाँव की प्रसिद्ध नाडी (सन् 1437 ई.)

नाडियाँ जोधपुर संभाग में अधिक लोकप्रिय हैं। जोधपुर जिले की शेरगढ़ तहसील के कोरणावटी के गाँव भाटेलाई चारणा में 500 – 700 वर्ष पुरानी नाडी है (चित्र 1.6)। शमशान घाट के आस – पास भी नाडी बनाने का प्रचलन रहा है जो दाह संस्कार के बाद स्नान के लिये प्रयोग होती है।

(ग) तालाब

तालाब नाडी की अपेक्षा और अधिक क्षेत्र में फैला हुआ रहता है तथा कम गहराई वाला होता है। तालाब प्रायः पहाड़ियों के पानी का संग्रहण करके ऐसे स्थल पर लाया जाता है जहाँ पानी के भराव की संभावना हो और तालाब के भरने पर बंधे को कम से कम या नगण्य क्षति हो। पहाड़ों से बहकर आया यह पानी तलहटी में आकर फैलाव ले लेता है । बीकानेर संभाग में जहाँ भी चारागाहों की जगह थी वहाँ वर्षा जल आवक होने से तालाबों का निर्माण किया गया जैसे गजनेर तथा कोलायत के तालाब। कई तालाब ऐसी जगह बने हैं जहाँ ऋषियों की तपोभूमि रही है। कपिल मुनि के नाम से विख्यात कोलायत का तालाब दूर – दूर तक मशहूर है। ऐसे तालाबों में श्रद्धालु कार्तिक माह में स्नान कर अपने आप को धन्य मानते हैं। इसी तरह नागौर व अजमेर जिले की सीमा पर पुष्कर (तीर्थराज) तालाब पूरे भारत में ही नहीं विदेशों में भी श्रद्धालुओं के लिये अति महत्व का स्थान है जहाँ कार्तिक पूर्णिमा के दिन स्नान करने पर श्रद्धालु पापों से मुक्ति की कामना करते हैं।

वैसे तो पूरे ही थार मरूस्थल में तालाब पाये जाते हैं लेकिन नागौर जिले में सर्वाधिक हैं। नागौर जिले की भौगोलिक स्थिती दूसरे जिलों से थोड़ी भिन्न है यहाँ हल्की मटियाली दोमट मिट्टी पाई जाती है तथा जमीन के नीचे मुर्रम ज्यादा होने से जल का रिसाव कम होता है और जल अधिक दिनों तक टिकता है। नागौर जिले के छोटे बड़े कस्बों जैसे नागौर, मूण्डवा, हरसलाव, खजवाणा, कुचेरा, ड़ेगाणा, मेड़ता, परबतसर में बड़े – बड़े तालाब हैं। गोंवा – जोधड़ास के तालाब का जल संग्रहण क्षेत्र 800 हैक्टेयर है (चित्र 1.7)। इस तालाब के बारे में यह तथ्य प्रचलित है कि पिछले 500 वर्षों में कभी भी यह तालाब खाली नहीं हुआ है।

तालाब का पाल (बांध) चौड़ा होता है। कई जगहों पर पाल स्थानीय पत्थरों की सहायता से पक्की बनाई गयी है ताकि वर्षा के पानी की तेज धार से पाल क्षतिग्रस्त नहीं हो सके। तालाबों के किनारे पक्के घाट बने हुए हैं। जैसलमेर व फलोदी, कोलायत, गजनेर, मूण्ड़वा तथा परबतसर के तालाब नालों व नदियों के बहाव को रोककर बनाये गये हैं जिनकी बनावट बड़ी सुदृढ़ व आर्कषक है।

तालाब के जल ग्रहण क्षेत्र व उसके अन्दर की सफाई का ग्रामवासी सामूहिक रूप से ही ध्यान रखते हैं। तालाबों के रख – रखाव के लिये प्रायः त्यौहारों, मेलों तथा धार्मिक दिनों के अवसर पर ग्रामीणों द्वारा सामूहिक श्रमदान करने की प्रथा है। इसके अलावा थार मरूस्थल में दुर्भिक्ष अकाल के समय राज्य सरकार द्वारा चलाये गये अकाल राहत कार्य के समय भी इन तालाबों की साफ – सफाई व मिट्टी आदि की खुदाई का कार्य करना एक आम बात है।

4 – खड़ीन

खड़ीन मुख्यतः जैसलमेर जिले का पौराणिक पंरम्परागत वर्षा जल के संग्रहण का मुख्य स्रोत है। खड़ीन का इतिहास उतना ही पुराना है जितना जैसलमेर के बसने का। ऐतिहासिक तौर पर जैसलमेर में खड़ीनों का प्रचलन पालीवाल प्रथा की देन है। जैसलमेर में जहाँ एक तरफ सुनहरे चमकते रेतीले टीबों की भरमार है तो दूसरी ओर पथरीली, उबड़ – खाबड़ भूमि तथा निरजन पहाड़ियों की भी कमी नहीं है। इसके अलावा उपजाऊ भूमि व मैदानी तथा पठारी क्षेत्र भी जैसलमेर जिले में बहुतायत में हैं।

पहाड़ियों के बीच वर्षा जल का इकट्ठा होना ही खड़ीन का प्रारूप बन जाता है। इस इकट्ठे हुए जल का उपयोग अधिकतर पशुओं के लिये किया जाता है तथा पानी के सूखने पर वहाँ खेती भी की जाती है या इसमें पनपा घास पशुओं के चरने के काम आता है। कुछ स्थानों पर कृत्रिम खड़ीनों का भी निर्माण हुआ। खड़ीनों में जल – भराव 2 हैक्टेयर से लेकर कई कि. मी. तक में किया जाता है। जैसलमेर के देवा गाँव में सरकारी प्रयासों से निर्मित खडीन सामूहिक रूप से खेती करने के उपयोग में ली जाती है जो करीब 3 – 5 हैक्टेयर में फैली है। इसी प्रकार मसूरड़ी, परात तथा लुंदरवा गाँव की खड़ीनों का जल भराव मीलों में फैला हुआ है। खड़ीन के पेटे में या बन्ध के दूसरी ओर छोटी व कम गहरी कुइयाँ बनाने का प्रचलन है। इन कुइयों से निकाला गया जल पीने के काम में तो लिया ही जाता है साथ ही कुछ स्थानों पर इन कुइयों से सिंचाई कर सब्जी व फूल आदि उगाने की भी प्रथा है। खड़ीन के क्षेत्र में बारानी फसले जैसे गेहूँ,, चना आदि की भी खेती की जाती है (चित्र 1.8)।

5 – सर, सागर, समंद में वर्षा जल का संग्रहण

थार मरूस्थल के कुछ जिलों में वर्षा जल का संग्रहण करने के लिये सर, सागर व समंद प्रचलित हैं। सर, सागर, समंद आदि का निर्माण राजाओं के शासन काल में ही हुआ। इसलिये इनका नामकरण भी राजाओं या उनसे जुड़े हुए लोगों के नाम पर ही हुआ। इन सर, सागर व समंदों की पाल पर राजाओं के रहने के लिये विशेष महल बने हैं। ये महल गर्मियों में ठण्डे व सुरक्षा की दृष्टि से सुरक्षित माने जाते हैं। जैसे जोधपुर में पदमसर, रानीसर तथा जोधपुर शहर में ही गुलाबसागर, बालसमंद आदि तथा पाली जिले में सरदार समंद, बाँकली तथा जवाई बान्ध वर्षा के पानी का संग्रहण करने के जीवन्त उदाहरण हैं (चित्र 1.9)। सर, सागर तथा समंदों की पाल ईंट या पत्थर से चिनाई करके मजबूत बनाई जाती है तथा पानी भरने के लिये सीढ़ियाँ, रपटे, घाट आदि बनाये जाते हैं। सफाई का विशेष ध्यान रखा जाता है क्योंकि अकाल के समय यह पीने के पानी का मुख्य स्रोत रहता है।

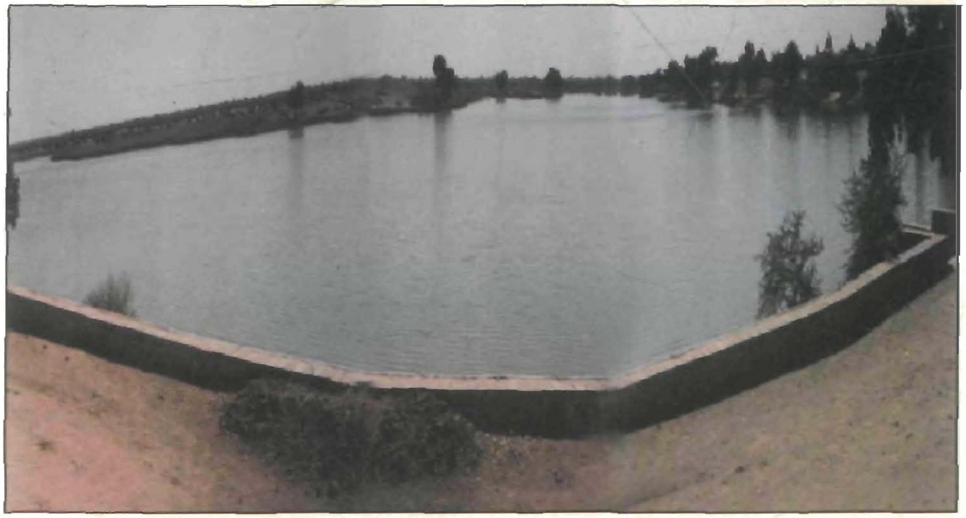

चित्र 1.7 : नागौर जिले का गोंवा – जोधड़ास तालाब (सन् 1500 ई.)

चित्र 1.8 : जैसलमेर जिले की प्रसिद्ध रूपसी खड़ीन

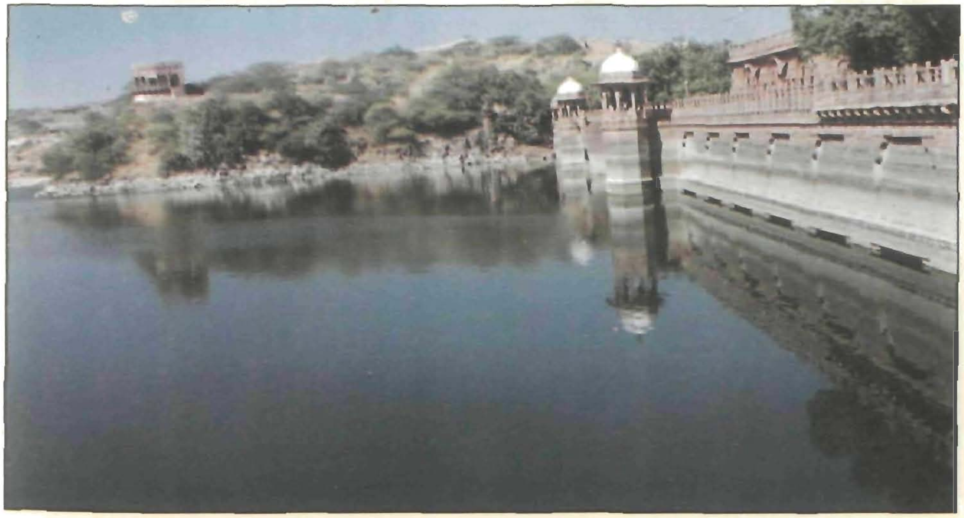

चित्र 1.9 : जोधपुर की प्रसिद्ध पौराणिक झील बालसमंद (सन् 1159 ई.)

सर, सागर तथा समंदों के पानी को पीने के अलावा खेती में भी प्रयोग में लिया जाता है। जैसे पाली जिले में बाँकली, सरदार समंद व ज़वाई बान्ध पीने के पानी के अलावा सिंचाई (नहरों के जाल द्वारा) के काम में भी आते हैं। कभी – कभी इन बान्धों में पानी खत्म होने पर इनके भराव क्षेत्र में खेती भी की जाती है।

बढ़ती आबादी तथा प्रति ईकाई कृषि योग्य भूमि पर आश्रित लोगों की जनसंख्या में वृद्धि, प्राकृतिक जल संसाधनों के अत्याधिक दोहन तथा निरन्तर जल स्तर में 1 – 3 मी. प्रति वर्ष गिरावट के कारण मरूस्थलवासियों को अपने पौराणिक परम्परागत वर्षा जल आधारित स्रोतों को पुनः अपनाना होगा या इनको और उन्नत करना होगा अन्यथा वह दिन दूर नहीं जब थार मरूस्थल में पानी की त्राही – त्राही मचेगी। परम्परागत तकनीकें न केवल वर्षा जल का संचयन करती थी अपितु भूजल के पुर्नभरण में मुख्य भूमिका निभाती थी। आज के युग में इन परम्परागत तकनीकों के साथ – साथ नवीन तकनीकें अपनाने की आवश्यकता है ताकि मरूस्थल में जल की समुचित व्यवस्था हो सके और सूखा काल में पानी की त्राही – त्राही न मचे। साराशं में निम्नलिखित कदम उठाने की आवश्यकता है :

(i) परम्परागत ज्ञान को वर्षा जल के संचयन और संरक्षण में अपनाना। आवश्यकतानुसार नवीन तकनीकों से पूरा करना ।

(ii) मरूस्थल में कम पानी चाहने वाली वनस्पतियाँ जैसे घासें, वृक्ष और फसलों को अपनाकर भूजल स्रोतों को कम से कम दोहना।

(iii) बूंद – बूंद सिंचाई या फव्वारा विधि से सिंचाई कर पानी की बर्बादी को कम करना।

(iv) बरसात में छत के पानी का संचयन करना। वर्षा काल में खेत का जल खेत में या फिर टांकों में, नाडी, ताल, तलैयों, और समंदों में संचयन करना।

(v) ग्रामवासियों और शहरों में जल संरक्षण की शिक्षा व प्रशिक्षण देना।

(vi) आवश्यकतानुसार राज्य स्तर पर वैधानिक नियम बनाना और उनका अनुपालन कराना ताकि आने वाली पीढ़ी को पानी की पूर्ति कर सकें।

२ थार रेगिस्तान में फसल उत्पादन के लिये नमी संग्रहण एवं क्षारीय – लवणीय भूमि सुधार के पारम्परिक तरीके व ज्ञान

जबरदान कविया, हरपाल सिंह एवं दिनेश चन्द्र जोशी

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी भाग में वर्षा बहुत ही कम (100 – 450 मि. मी.) होती है। राज्य के इस भाग में अकाल की छाया हमेशा ही बनी रहती है। थार मरूस्थल में पानी ही जीवन है। वर्षा की कमी तथा इसकी अनिश्चितता और दो वर्षा के बीच का अधिक अन्तराल फसलों पर प्रतिकूल प्रभाव ड़ालते हैं। इन विषम परिस्थितियों को झेलते हुए यहाँ का किसान भूमि की नमी बनाये रखने के लिये विभिन्न पारम्परिक तरीके अपनाते आया है। प्रदेश के इस भाग में कई जगहों पर क्षारीय – लवणीय भूमि की भी भरमार है। इस प्रकार की भूमि पाली जिले में अधिक पायी जाती है। किसानों ने इस प्रकार की भूमि के सुधार के लिये भी अनेक पारम्परिक तरीके खोज निकाले हैं।

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी भाग में अधिकतम रेतीली भूमि है। कुछ जगह पर रेतीली – दोमट/दोमट मिट्टी भी है। इस क्षेत्र में खरीफ में बाजरा, मोंठ, मूंग, ग्वार, तिल आदि की खेती बहुतायत से की जाती है। फसलों का अच्छा उत्पादन लेने के लिये नमी संग्रहण करके बुवाई करते हैं। इसके अतिरिक्त जहाँ दोमट भूमि है या भूमि के नीचे मुर्रम वाली तह है उन खेतों में खरीफ में अच्छी वर्षा होने पर नमी संग्रहण कर रबी में फसल की बुवाई कर अच्छा उत्पादन लेते हैं। किसानों ने अनुभव द्वारा नमी संग्रहण की पारम्परिक विधियाँ विकसित की हैं तथा इन्हें अपनाया जाता रहा है।

पाली जिले की पंचायत समिति रोहट, मारवाड़ जँक्शन तथा सोजत के क्षेत्रों में क्षारीय – लवणीय (खारचियाँ) भूमि अधिक पायी जाती है। यह भूमि प्राकृतिक रूप से लवणीय है तथा इस पर लवण सहन करने वाली झाड़ियाँ एवं घास ही उग पाते हैं तथा खेती के लिये अनुपयुक्त है। इस क्षेत्र में सिंचाई के लिये उपयोग में लिया जाने वाला पानी लवणीय एवं तेलीय है तथा इससे सिंचित मृदाओं में लवणीयता एवं क्षारीयता की समस्या हो जाती है। इस प्रकार किसान भूमि को सुधारने के लिये समय – समय पर पारम्परिक ज्ञान का उपयोग कर अच्छी उपज लेते आये हैं।

1– नमी संग्रहण की पारम्परिक विधियाँ

(क) खरीफ की फसल की बुवाई के लिये नमी संग्रहण करना

जोधपुर, नागौर व पाली जिलों में उपयुक्त खेतों में वर्षा प्रारम्भ होते ही नमी संग्रहण करने की प्रक्रिया प्रारम्भ कर देते हैं तथा खरीफ की अन्य फसलों की बुवाई के लगभग 1 माह बाद तिल की बुवाई करते हैं ताकि संग्रहित नमी से तिल की अच्छी फसल हो सके। नमी संग्रहण की निम्न पारम्परिक विधियाँ अपनाई जाती रही हैं :

(i) **देशी हल के उपयोग से नमी संग्रहण करना :** पहली जुताई कतारों के बीच अधिक दूरी रखते हुए करते हैं जिसे स्थानीय भाषा में फाड़ा निकालना कहते हैं। दूसरी जुताई पहली जुताई (उत्तर – दक्षिण) के विपरित दिशा (पूर्व – पश्चिम) में करते हैं। इसमें देशी हल से कतारों के बीच बहुत ही कम दूरी रखते हुए जुताई करते हैं जिसे स्थानीय भाषा में हलांव कहते हैं तथा तीसरी जुताई को संठाव कहते हैं। तीसरी जुताई में (दक्षिण – पूर्व) दिशा में जुताई करते हुए तिल की बुवाई कर देते हैं। इस तरह वर्षात में एक माह में 2 से 4 बार जुताई कर पर्याप्त नमी संग्रहित होने के साथ मृदा को पोली कर देने से तिल की बढ़ोतरी अच्छी होती है तथा उत्पाद्न भी अधिक मिलता है।

(ii) **बक्खर के उपयोग से नमी संग्रहण करना :** भूमि की नमी के ह्रास को रोकना थार मरूस्थल के लिये अत्यन्त आवश्यक है। खेत की तैयारी में बक्खर के उपयोग से नमी के ह्रास को काफी हद तक रोका जा सकता है। बक्खर के ब्लेड़ की खासियत होती है कि जमीन को एक तह तक काटता है और उसके नीचे की जमीन वैसी की वैसी बनी रहती है। इस प्रकार खेत की तैयारी करने से समतल तह के ऊपर भुरभुरी मिट्टी ढ़की रहती है। बुवाई के समय इस तह पर बीज गिराया जाता है जो कि भली भांति अंकुरित होकर इस तह से नमी सोखता है जिससे फसल अच्छी होती है। मध्य प्रदेश में काली मिट्टी होने से बक्खर बहुत ही लोकप्रिय एवं लाभदायक है लेकिन मध्य प्रदेश में प्रचलित बक्खर के ब्लेड़ की चौड़ाई कम होती है इसलिये बारानी खेती वाले क्षेत्रों में इस यंत्र का बहुत ही महत्व है। ट्रैक्टर के हाईड्रोलिक द्वारा जुताई की गहराई कम ज्यादा की जा सकती है।

(iii) **ट्रैक्टर से जुताई कर नमी संग्रहण करना :** ट्रैक्टर का उपयोग बढ़ने से किसान खेत की जुताई करने की प्रक्रिया में परिवर्तन लाकर फसल की बुवाई करने लग गये हैं। खरीफ में पहली वर्षा होते ही खेत में ट्रैक्टर चलित हैरो से जुताई कर छोड़ देते हैं तथा दूसरी वर्षा होते ही बीज छिड़क कर ट्रैक्टर चलित कल्टीवेटर से दो बार जुताई कर देते हैं। इससे खेत में नमी संग्रहित रहती है तथा फसल अच्छी होती है।

(ख) रबी की फसल की बुवाई के लिये खेत में नमी संग्रहण करना

पश्चिमी राजस्थान के क्षेत्र नागौर, बाड़मेर व जैसलमेर जिले के कुछ क्षेत्र के गाँवों में खरीफ

के समय खेतों की जुताई करते हैं। पहली जुताई पूर्व से पश्चिम दिशा में करते हैं तो दूसरी जुताई इसके विपरित उत्तर से दक्षिण की दिशा में तथा तीसरी जुताई दक्षिण – पूर्व से उत्तर – पश्चिम दिशा में की जाती है ताकि जमीन के हर भाग की जुताई हो जाये। इसके पश्चात खेत में पाटा देकर छोड़ देते हैं। इस तरह जुताई करने से वर्षात में खेत का पानी बाहर न जाकर जमीन में ही सोख लिया जाता है। यह प्रक्रिया श्रावण – भादों माह में सम्पन्न कर लेते हैं ताकि रबी का मौसम प्रारम्भ होते ही पाटा लगे खेत में कुछ दिन बाद ही रबी की फसलें जैसे रायड़ा, तारामिरा, गेहूँ, चना, सौंफ, आदि की बुआई कर देते हैं। इस प्रकार पारम्परिक ढंग से बरसात के पानी को खेतों में संग्रहित करने से रबी की फसल के लिये पर्याप्त नमी हो जाती है।

2 – क्षारीय – लवणीय भूमि सुधार के पारम्परिक तरीके

लवणीय एवं तैलीय पानी से सिंचित खेतों में एक बार फसल होने के बाद 2 – 3 सालो तक फसल नहीं होती है। इन क्षारीय – लवणीय भूमि को सुधारने के लिये किसान निम्न उपाय करते आये है :

(i) गेहूँ की फसल लेने के बाद खेत को एक से तीन वर्ष तक खाली रहने देते हैं ताकि वर्षा के जल के साथ लवणों के रिसाव से जमीन का खारापन कम हो जाये।

(ii) हर वर्षा के बाद जुताई करते रहते हैं। इस तरह बरसात में 5 – 7 बार जमीन को पलट देते हैं। भादवे के महीने में आखिरी जुताई कर खेत में पाटा लगाकर छोड़ देते हैं तथा उसके 15 दिन बाद रबी की फसल की बुवाई कर देते हैं। रबी में जौ या लवण प्रतिरोधी गेहूँ की के – 65 प्रजाति या रायड़ा बोते हैं जो लवणीय मृदा में भी उपज देने में सक्षम हैं।

(iii) सक्षम किसान गेहूँ लेने के बाद गर्मियों में उस खेत में देशी खाद ड़ाल देते हैं तथा वर्षा होने पर खाद को भूमि में मिला देते हैं। खेत में खाद ड़ालने की प्रक्रिया कुछ इस प्रकार होती है कि गाय – भैंस के गोबर का खाद ड़ालने पर तीन वर्ष बाद व भेड़ – बकरी का खाद ड़ालने पर दो वर्ष बाद पुनः खाद ड़ालते हैं।

(iv) प्रगतिशील किसान पहाड़ों की तलहटी के पास बने तालाबों की मिट्टी लाकर क्षारीय या लवणीय प्रभावित खेतों में ड़ालते हैं। यह प्रक्रिया खर्चीली होने तथा ऐसे तालाबों की मिट्टी सरलता से न मिलने के कारण सीमित होती है।

(v) क्षारीय/लवणीय भूमि सुधारने के लिये किसान खेतों में शण या सनई उगाकर उसे हरी अवस्था में फूल आने पर जुताई कर खेत में दबा देते हैं। इस प्रक्रिया से 10 – 12 प्रतिशत रबी की फसल की पैदावार अधिक होती है। शण/सनई खेत में सड़ने से उस खेत की जमीन पोली हो जाती है तथा वर्षात में भूमि में अधिक जल संग्रहित होता है। ऐसा करने से जमीन की क्षारीयता कम

होती है कई जगह जमीन के खारेपन को कम करने के लिये हरी खाद के रूप में ग्वार को फूल आने की अवस्था में जुताई कर खेत में दबा देते हैं।

(vi) राजस्थान के पाली जिले के किसान भूमि में खारेपन का प्रभाव कम करने के लिये तिल के डंठलों का उपयोग करते हैं इसके लिये खेत में बड़ी – बड़ी क्यारियाँ बनाते हैं ताकि वर्षात में पानी इकट्ठा रहे। पानी से भरी क्यारियों में तिल के डंठल फैला देते हैं तथा कुछ दिन बाद डंठलों को पानी के बाहर निकाल देते हैं।

(vii) तेलीय पानी से 8 – 10 साल तक सिंचाई के बाद मिट्टी सख्त हो जाती है तथा क्षारीयता का प्रभाव हो जाता है। इस प्रकार के खेतों में वर्षा की हर बौछार के बाद में हल चलाते हैं चाहे फसल न भी लेनी हो, मौसम में तीन – चार बार हल चलाते हैं तथा मिट्टी के मुलायम होने के पश्चात फसल लेते हैं।

(viii) कुछ किसान इस सख्त मिट्टी में नमी का अन्तःस्त्रवण बढ़ाने के लिये रेत के धोरों से रेत लाकर सतही मिट्टी में मिलाते हैं।

(ix) अत्यधिक लवणीय पानी में खारचियाँ के–65 किस्म की गेंहूँ लगाते हैं।

(x) हवा द्वारा उड़ने वाली खेत की मिट्टी को रोकने के लिये झाड़ियों को सूक्ष्म हवा रोधी के रूप में खेत में खड़ी/आड़ी दशा में रख देते हैं। यह दूसरे खेत की मिट्टी को भी रोक लेती है तथा इस प्रकार जमा मिट्टी से खेत की उर्वरता में सुधार होता है।

(xi) सामान्य लवणीय पानी में किसान रायड़ा, जीरा तथा इसबगोल की खेती करते हैं। अधिक लवणीय होने पर गेहूँ तथा अत्यधिक लवणीय होने पर खारचियाँ गेहूँ एवं जौ की खेती करते हैं।

3 उत्तर – पश्चिमी राजस्थान में सीमित जल उपयोग से तरबूज व खरबूजे की खेती की पारम्परिक विधि : बिरानी बाड़ी

जबरदान कविया, सुरेन्द्र कुमार वर्मा एवं हरपाल सिंह

बीकानेर क्षेत्र के रेतीले भू – भाग में किसानों ने सीमित जल उपयोग से तरबूज व खरबूजे की खेती कर अच्छी फसल ली है इसे बिरानी बाड़ी कहते हैं। जलाभाव से त्रस्त क्षेत्रों में ऐसी खेती के प्रोत्साहन से छोटे व गरीब किसान लाभाविंश होगें। इस बिरानी बाड़ी से तरबूज व खरबूजे की खेती करने में भू व नमी संरक्षण, जल व्यवस्थापन व मौसम की प्रतिकूलता में फसल संरक्षण के पारम्परिक ज्ञान का समावेश है।

थार रेगिस्तान में जहाँ वर्षा का कोई भरोसा नहीं है और भूजल भी गहरा व सीमित है मरूस्थलवासियों ने खड़ीन, नाडी, तलईयां, टांके तथा अन्य वर्षा जल संग्रहण की पारम्परिक विधियाँ अपनाकर अपनी व अपने पशुधन की जल की आवश्यकता की पूर्ति की है। मरूस्थल में कृषि की सफलता कभी निश्चित नहीं होती। ऐसी स्थिति में बहुत ही कम पानी के उपयोग से सब्जी की सफल खेती करके आमदनी प्राप्त करना एक कपोल कल्पना ही मानी जाऐगी। बीकानेर क्षेत्र के किसानों ने अपनी एक विशिष्ट पारम्परिक स्वदेशी पद्धति से सब्जी उत्पाद्न की तकनीक विकसित की है। रेतीले भू – भाग में सीमित जल से तरबूज व खरबूजे की खेती करना यहाँ की कुछ जातियों का व्यवसाय है तथा इसे "बिरानी बाड़ी" कहते हैं। सब्जी के लिये कच्चे तरबूज (लोइया) के अच्छे भाव मिलते हैं। माली समाज द्वारा इस क्षेत्र में बिरानी बाड़ी लगाने का पारम्परिक ज्ञान अन्य जातियों ने भी अपनाया है। तीन दशकों से नलकूपों के प्रचलन व नहरी क्षेत्र बढ़ने से यह परम्परा कम हो रही है। बीकानेर के आसपास के गाँवों गिगासर, सागर तथा कनासर, नापासर और कोलायत की ओर कोड़मदेसर में आज भी यह विधि प्रचलित है। इन गाँवों में जा कर इस पद्धति का अध्ययन व प्रत्यक्षण किया गया तथा वैज्ञानिक दृष्टि से यह तकनीक बहुत उपयोगी पाई गई क्योंकि जलाभाव से त्रस्त क्षेत्रों में ऐसी खेती के प्रोत्साहन से छोटे व गरीब किसान लाभदायी खेती कर सकते हैं। इस बिरानी बाड़ी से तरबूज व खरबूजे की खेती करने में भू व नमी संरक्षण, जल व्यवस्थापन व मौसम की प्रतिकूलता में फसल संरक्षण के पारम्परिक ज्ञान का समावेश है।

1 – बिरानी बाड़ी लगाने की विधि

बिरानी बाड़ी लगाने के लिये वर्षा ऋतु में खेत में दो बार हैरो चलाकर जमीन जोतते हैं। सर्दियों में वर्षा हो जाए तो हैरो द्वारा एक और जुताई कर पाटा लगा देते हैं ताकि नमी का संरक्षण हो सके। फरवरी के महीने में (शिवरात्रि से पहले) खेत में लगभग 0.60 मीटर व्यास के थाले कतार में 1.00 से 1.25 मीटर की दूरी पर बनाते हैं। कतार से कतार का फांसला 1.0 – 1.5 मीटर तक रखा जाता है (चित्र 3.1)। थालों की कतार सम्भवतः दक्षिण – पश्चिम दिशा में बनाते हैं क्योंकि गर्मियों में इस दिशा से तेज हवाएं चलती हैं जिससे रेतीली मिट्टी का क्षरण होता है। थालों की दो लाइनों के बीच में स्थानीय बनस्पति जैसे सूखी सिणिया (क्रोटोलारिया बुरह), खींप (लैप्टाडेनिया पाईरोटैकनिका) के प्रयोग से एक वायु गतिरोधक पंकित इस प्रकार खड़ी करते हैं ताकि गर्मियों में हवा के साथ रेत न उड़े तथा तरबूज और खरबूजे की बेलों को भी सहारा मिलता रहे (चित्र 3.2)।

बुवाई से पहले बीजों का पारम्परिक तरीके से उपचार करते हैं। बीज में राख मिलाकर टाट पट्टी में पोटली बांध कर पानी में भिगो देते हैं। तत्पश्चात इसे दो दिन के लिये जमीन में दबा देते हैं तथा तीसरे दिन शिवरात्रि के दिन बुवाई कर देते हैं। कुछ किसान बीज को केवल 2 रात तक पानी में भिगोकर रखते हैं तथा शिवरात्रि के दिन बुवाई कर देते हैं। इस प्रकार उपचार करने से बुवाई के पहले ही बीज में अंकुरण की प्रक्रिया आरम्भ हो जाती है। बीज की बुवाई करते समय हर थाले के बीच में एक लोटा (लगभग 1 लीटर) पानी ड़ालकर गीली रेत हटाकर 15 से. मी. गहरा गढ्ढ़ा बना देते हैं तथा अंकुरित बीज ड़ालकर ऊपर से गीली रेत ड़ाल देते हैं। इस गीली रेत की सतह के ऊपर थोड़ी सी सूखी रेत भी ड़ाली जाती है ताकि नमी न उड़ पाए। एक गढ्ढ़े में 5 – 10 बीज तक ड़ाले जाते हैं क्योंकि मौसम के तीखे तेवर और पक्षियों से होने वाले नुकसान के चलते बीज की मात्रा अधिक रखनी पड़ती है। इस प्रकार लगभग 5 से 8 दिन में पौधे जमीन के ऊपर आ जाते हैं। यदि कहीं किसी कारण अंकुरण न हुआ हो अथवा पौधे मर गए हों और थाले खाली दिखते हों तो वहाँ पुनः उपरोक्त विधि द्वारा बुवाई की जाती है। थाले में पौधों के चारों ओर मिट्टी को पांव से इस प्रकार दबाते हैं ताकि पौधों को किसी प्रकार का नुकसान न हो। ऐसा करने से नमी कम उड़ती है। इसके एक महीने बाद तक पानी नहीं देते हैं। एक या दो महीने बाद, यदि सर्दी के मौसम में वर्षा न हुई हो या भूमि में पर्याप्त नमी न हो तो, थाले में हल्की सी मेन्ड़बन्दी, 2 से 5 लीटर पानी देकर, ऊपर से सूखी रेत की परत दे देते हैं। नमी की कमी न हो तो एक – एक महीने के अन्तराल से केवल एक लीटर पानी हर थाले में पर्याप्त होता है।

प्रारम्भ में एक थाले में अधिकतम चार पौधों को रहने दिया जाता है। पौधा बड़ा होने पर, जब बेलें फैलना चालु हो जाती हैं और उनकी जीवितता सुनिश्चित हो जाती है तो एक थाले में अधिकतम दो बेलें रखी जाती हैं। दो कतारों के बीच में बेलों के तातों को इस प्रकार मिलाते हैं ताकि गर्मी के मौसम में बेलें तेज हवा से बिखरे नहीं। ऐसा करने से हवा द्वारा मिट्टी का कटाव भी कम होता है। फसल को पक्षियों से बचाने के लिये लगातार चौकसी रखनी पड़ती है क्योंकि आसपास कहीं कोई खाद्य

वनस्पति नहीं होती। कभी – कभी फसल पर कद्दू के लाल भृंग कीट का आक्रमण होता है। फसल को लाल भृंग के प्रकोप से बचाने के लिये गोबर के कण्ड़ों की छनी हुई राख का भुरकाव करते हैं।

दो माह बाद मई (अक्षया तृतीया) तक फूल आने लग जाते हैं। बीज बुवाई के ढाई से तीन माह बाद छोटे तरबूज (लोइया) तथा खरबूजे मंडी में बेचने लायक हो जाते हैं (चित्र 3.3)। फरवरी – मार्च में लगाई हुई बिरानी बाड़ी से अक्टूबर तक आय होती रहती है। मंडी में ले जाने के लिये खरबूजे प्रायः एक दिन पहले शाम को तोड़ कर टोकरियों में भर लेते हैं जबकि तरबूज (लोइया) उसी दिन जल्दी तोड़ कर प्रातः 8 बजे तक मंडी में बेचने पहुँचा देने होते हैं। बिरानी बाड़ी स्थानीय लोगों में एक लोकप्रिय उपज है तथा चाहत रखने वाले कई लोग खेतों पर सीधे जाकर किसानों से खरीद लेते हैं।

बीकानेर – जयपुर मार्ग पर स्थित सागर गाँव में बिरानी बाड़ी लगाने वाले एक किसान शिवलाल ने 1999 में 1.5 हैक्टेयर क्षेत्रफल में बिरानी बाड़ी लगाई। किसान ने बुवाई के समय ही श्रमिक लगा कर मजदूरी दी अन्यथा परिवार के सदस्यों ने ही काम किया। पारीवारिक श्रम को ध्यान में रखते हुऐ आमदनी तथा व्यय का ब्यौरा तालिका 3.1 में दिया गया है। आय – व्यय के आधार पर प्रति हैक्टेयर शुद्ध लाभ रू 17616 आता है।

जल की सीमित उपलब्धता के कारण फसल में किसी भी प्रकार के उर्वरक के उपयोग की अनुशंसा व्यवहारिक नहीं होगी और वैसे भी कुष्माण्ड कुल की इन फसलों को उर्वरक पोषण की आवश्यकता नहीं होती। अतः रेगिस्तानी क्षेत्रों में अपनाने के लिये बारानी सब्जी उत्पाद्न की यह पारम्परिक विधि 'बिरानी बाड़ी' व्यावहारिक और लाभदायक है।

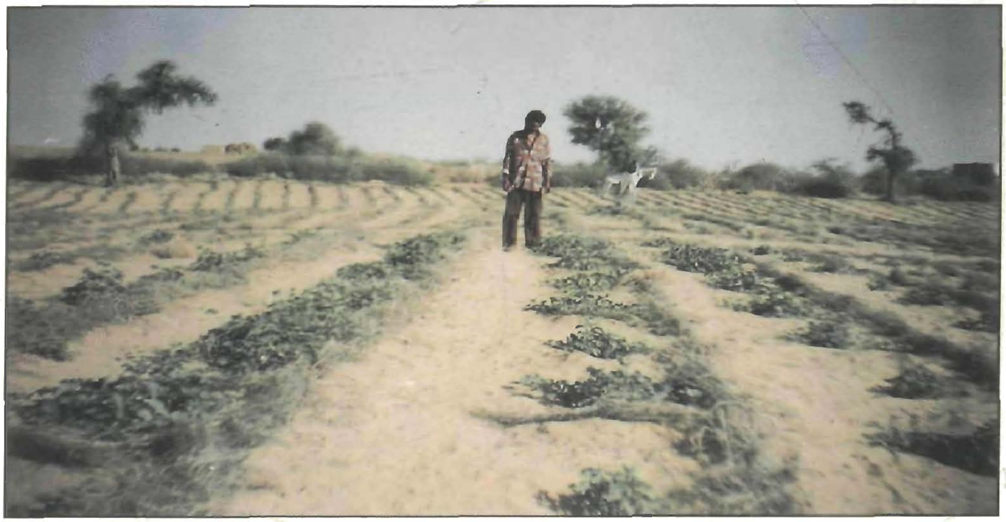

चित्र 3.1 उत्तर – पश्चिम राजस्थान में पनपती तरबूज़ – खरबूज़े की फसल का दृश्य (बिरानी बाड़ी)

चित्र 3.2 : सिणिया (क्रोटोलारीया बुरह)

चित्र 3.3 पके हुए खरबूज़ों को तोड़ती ग्रामीण बालिका

तालिका 3.1 : 1.5 हैक्टेयर क्षेत्रफल में बिरानी बाड़ी का आय – व्यय का लेखा – जोखा (वर्ष 1999)

क्र.सं.	कार्य	विवरण	दर, रू/ईकाई	कुलराशि रू
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1	खेत की तैयारी	ट्रैक्टर चलित हैरो द्वारा तीन जुताई की। प्रति जुताई 2 घंटे का समय लगा। इस प्रकार कुल समय 6 घन्टे में खेत की तैयारी हो गयी।	70/–	420/–
2	पाटा लगाना	एक बार पाटा लगा ।	80/–	80/–
3	खेत के चारों ओर काटों की बाढ़ लगाना	20 श्रमिक दिवस लगे।	70/–	1400/–
4	क्षरणरोधी कतार व थाले बनाना (कतार से कतार की दूरी 1.5 मी. व पौधे से पौधे की दूरी 1.25 मी.)	32 ऊँटगाड़ी खींप की कटाई व ढुलाई के लिये 20 श्रमिक दिवस, बाढ़ लगाने के लिये 10 श्रमिक दिवस तथा थाले बनवाने में 30 श्रमिक दिवस (कुल श्रमिक दिवस, 60)	70/–	4200/–
5	बीज की मात्रा	खरबूजे का बीज : 1 कि. ग्रा. तरबूज का बीज : 4 कि. ग्रा. कुल बीज : 5 कि. ग्रा.	60/–	300/–
6	बीजोपचार के बाद बुवाई (दो दिन तक) बुवाई के लिये गढ्ढा (कोरिया) बनाना थाले के ऊपर से सूखी मिट्टी की परत हटाना। बुवाई करना।	3 श्रमिकों द्वारा फावड़े से थाले के ऊपर की मिट्टी हटवाई, दो श्रमिकों ने थालों के बीच में बीज बोने के लिये गढ्ढे (कोरिये) बनाये, 2 श्रमिकों ने थालों में पानी लाकर ड़ाला, 8 महिला श्रमिकों ने बुवाई की, 2 श्रमिकों ने बुवाई के बाद कोरियों को गीली मिट्टी से भरा, 2 श्रमिकों ने कोरियों पर सूखी मिट्टी की परत चढ़ाई। (कुल पुरूष श्रमिक दिवस 11) (कुल महिला श्रमिक दिवस 8)	70/– 50/–	770/– 400/– 1170/–

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
7	प्रत्येक कोरिये में 1 लीटर पानी ड़ालना	कुल 27 पानी की टकियाँ लगी (एक टंकी की भराव क्षमता 300 लीटर)	25/–	675/–
8	अकुंरित पौधों की देखभाल करना (पौधों के चारों ओर मिट्टी दबाना, पशु पक्षियों से अंकुरित पौधों को बचाना, पौधों की छटाई करना, एक थाले में केवल दो पौधों को रखना, फैली हुई बेलों के तन्तुओं को बांधना और सहारा देना)	रोजाना 1 श्रमिक 11 दिनों तक कार्य किया। एक बाल श्रमिक चार दिनों तक कार्य किया। दो बाल श्रमिक 5 दिनों तक कार्य किए। (कुल पुरूष श्रमिक दिवस 11) (कुल बाल श्रमिक दिवस 14)	70/– 40/–	770/– 560/– 1330/–
9	बाड़ी की देखभाल, कटाई (तुड़ाई) व मण्डी में ले जाकर बेचना	श्रमिक मार्च अप्रै. मई जून जुला. अग. सित. कुल दिवस महिला 5 5 5 30 31 31 13 120 बाल 30 50 60 60 50 31 13 294 पुरुष 0 0 5 20 31 20 13 89	50/– 40/– 70/–	6000/– 11760/– 6230/– 23990/–

सकल लागत	33565/–
सकल आमदनी (30 मई से 13 सितम्बर तक)	60000/–
शुद्धलाभ	26435/–

टिप्पणी : पानी केवल एक बार ही दिया गया था क्योंकि 20 मई तथा 21 जुलाई 1999 को वर्षा हो गई थी।

४ पश्चिमी राजस्थान में मेहन्दी की खेती की पारम्परिक विधि

जबरदान काविया, सुरेन्द्र कुमार वर्मा एवं हरपाल सिंह

दिल्ली – फरीदाबाद के क्षेत्रों में मेहन्दी की फसल से प्रभावित होकर मारवाड़ क्षेत्र के किसानों ने प्रायोगिक तौर पर इसकी खेती 1940 – 50 के किन्ही वर्षो में आरम्भ की। गुणवत्ता के आधार पर पाली जिले के सोजत क्षेत्र की मेहन्दी का उपयोग पूरे विश्व में प्रचलित है। मेहन्दी की खेती मुख्य रूप से वर्षा आधारित है। वर्षा के अभाव में सीमित सिंचाई कर अच्छी फसल ली जाती है। मेहन्दी की खेती करने में किसी प्रकार का खाद व कीट नाशक दवा का उपयोग नही किया जाता। मार्च के महीने में मेहन्दी के बीजों को क्यारियों में बोकर पौध तैयार की जाती है। वर्षा होते ही खेत की गहरी जुताई की जाती है। अगस्त माह में खेत में पंक्तियों में 20 सेन्टी मीटर की दूरी के फासले से पौधों को रोप दिया जाता है। पंक्ति से पंक्ति की दूरी 30 सेन्टी मीटर रखी जाती है। पौध की रोपाई करने के दूसरे – तीसरे दिन ही हल्की गुड़ाई की जाती है। मेहन्दी की कटाई नवम्बर माह में की जाती है। एक बार लगी फसल से किसान 30 – 40 वर्ष तक उपज लेते रहते हैं।

यूरोप और अरब देशों को वार्षिक 12 करोड़ रूपये से अधिक के निर्यात वाली मेहन्दी एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक फसल है। पहले इसका उत्पाद्न क्षेत्र दिल्ली – फरीदाबाद हुआ करता था जहां से मारवाड़ क्षेत्र के किसानों ने प्रायोगिक तौर पर इसकी खेती 1940 – 50 के किन्ही वर्षों में आरम्भ की। राजस्थान की समृद्ध परम्पराओं में विशिष्ट स्थान होने व खेती की सफलता से धीरे – धीरे मेहन्दी की खेती का रूझान और प्रचलन मारवाड़ जंक्शन, सोजत और जोधपुर के बिलाड़ा से लगते क्षेत्रों में बढ़ता गया। इसकी खेती के अन्य क्षेत्रों में राजस्थान में कोटा व गुजरात के सूरत जिलों का भी महत्व है परन्तु पाली जिले के सोजत से लगते क्षेत्रों की मेहन्दी का अपनी गुणवत्ता के कारण देश – विदेश के बाजारों में अपना विशिष्ट स्थान है। लगभग 1.5 लाख हैक्टेयर क्षेत्र में मेहन्दी की खेती की जाती है और इस फसल को उगाने वाले महत्वपूर्ण क्षेत्र तालिका 4.1 में दर्शाए गये हैं।

तालिका 4.1 : पश्चिमी राजस्थान में मेहन्दी की खेती के महत्वपूर्ण क्षेत्र

जोधपुर	अटपड़ा, बर, बिलाड़ा, चाड़वास, चामुण्डिया, चंदावल, चारणों की ढाणी, देवली, ढाकली, धांगड़वास, गागुड़ा, हरियाड़ा, होल्पुर, हूणगांव, जाटों की ढाणी, नेड़ा बेरा
मारवाड़ जंक्शन	बासनी, भगवानपुरा, बीलावास, बिठूड़ा, धाकड़ी, धीनावास, ढूंढावास, खैरवा, मारवाड़ जंक्शन, नागाबेरी, राणावास, सुरायता
सोजत	बासनी, दाड़िया, फुलाद, राइका की ढाणी, राजामाली, सारण, सिरियारी, सियाट, सोजतरोड़

इन क्षेत्रों की मेहन्दी की उत्तम गुणवत्ता के कुछ निहित कारण हैं। मेहन्दी की खेती के अधिकांश क्षेत्रों में सिंचाई के साधन नगण्य हैं और भूमि क्षारीय या लवणीय है। भूजल भी सीमित और फसलों हेतु अनुपयुक्त है। वर्षा की अनिश्चितता के कारण फसल उत्पाद्न करना और भी जोखिम भरा है। दूसरी तरफ बहुवर्षीय होने और किसानों के साथ कृषि श्रमिकों को भी सुनिश्चित लाभदायी आमदनी देने के कारण मेहन्दी की खेती में सहज आकर्षण है। वर्षा कम या न होने की स्थिति में फसल के पूरी तरह नष्ट हो जाने की सम्भावना नहीं होती वरना जरूरत पड़ने पर खारे पानी से सिंचाई भी की जा सकती है। पारम्परिक रूप से मेहन्दी की खेती में किसी भी तरह का खाद या अन्य रसायन नहीं दिया जाता। कृषि विभाग द्वारा अनुशंसित विधियाँ तर्कसंगत और व्यावहारिक न लगने के कारण किसान अपनाते नहीं। यह अवश्य है कि पौध तैयार करने के लिये अच्छे मीठे पानी की जरूरत होती है और इसलिये रोपणी में पौध तैयार करना भी ऐसे संसाधन युक्त किसानों की पहचान और व्यवसाय बन चुका है। ऐसे लोग व्यावसायिक स्तर पर पूरे क्षेत्र की पौध की मांग को पूरा करते हैं।

मारवाड़ जंक्शन और राणावास के अच्छी भूमि (दोमट) वाले क्षेत्रों में किसान मेहन्दी की सींचित खेती भी करते हैं और कम वर्षा वाले सालों में जब बाजार की मांगपूर्ति न होने के कारण भाव अच्छे मिलते हैं, भरपूर लाभ पाते हैं। यों भी इस क्षेत्र की मेहन्दी की अच्छी गुणवत्ता के कारण अच्छे दाम मिलते हैं।

क्षेत्र में उगाई जाने वाली मेहन्दी के पौधे दो तरह के होते हैं : उत्तम राचणी या देशी मेहन्दी जिसको लगाने से अच्छा रंग रचता है। इस मेहन्दी के पौधे 1.50 से 1.75 मीटर ऊँचाई के और गहरे हरे रंग की चौड़ी पत्ती वाले होते हैं। इससे हल्की, कम उपज देने वाले 60 से 75 सेन्टी मीटर ऊँचाई के पौधे और पीलापन लिये हरे, छोटे और नुकीली पत्तों वाली मेहन्दी को मूला मेहन्दी कहते हैं। मूला मेहन्दी अलाभकारी होने पर भी किसान लगी रहने देते हैं क्योकि बीज की अवस्था में दोनों मेहन्दियों में अन्तर कर पाना संभव नहीं होता और एक बार लगाने के बाद किसान बहुवर्षी फसल को, जब तक मजबूरी न हो, हटाते नहीं। यही कारण है कि बिल्कुल भरोसे के स्रोत से बीज या पौध प्राप्त किये जाएं।

1 – रोपणी तैयार करना

होली के त्यौहार के आसपास मार्च के महीने में रोपणी में पौध तैयार की जाती है। एक हैक्टेयर क्षेत्रफल में पौध लगाने के लिये लगभग 3.5 कि. ग्रा. बीज काफी होता है। रोपणी लगाने वाले अच्छी तरह से महीन मिट्टी से तैयार लगभग 4 वर्ग मीटर की क्यारियों में बीज को एक सा छिड़क कर बोते हैं और हल्की मिट्टी में मिला कर झारे से पानी देते हैं। बुवाई के सात दिन बाद फिर एक सिंचाई करते हैं। बुवाई के 12 दिनों बाद अंकुरण स्पष्ट होने लगता है और लगभग 80 प्रतिशत बीज अंकुरित हो पाते हैं। शुरु में आवश्यकतानुसार रोपणी में खरपतवार से बचाव हेतु सार संभार की जाती है। इसके अलावा लगभग हर 15 दिनों के अन्तराल पर सिंचाई जारी रखी जाती है, जब तक कि खेतों में रोपने के लिये पौध का उठाव नहीं कर लिया जाता।

2 – खेत की तैयारी

मेहन्दीं की सफल खेती के लिये भूमि में वर्षा जल का संरक्षण किया जाता हैं। इसके लिये वर्षा होते ही ट्रैक्टर चलित तवीदार हल द्वारा लगभग 30 – 35 सेन्टी मीटर गहरी जुताई करके पाटा लगाया जाता है। इसके बाद कल्टीवेटर से 30 सेन्टी मीटर दूरी की कतारों या ऊगंरों को एक दूसरे को काटते हुए जुताई की जाती है और लगभग एक बीघा (300 से 365 वर्ग मीटर) नाप के बड़े पालों को चिन्हित करते हुए 30 – 35 सेन्टी मीटर ऊँची मेड़ें बना दी जाती हैं जिनमें वर्षा जल संग्रहित हो सके।

3 – पौधों की रोपाई

अगस्त माह में पर्याप्त वर्षा और भूमि में समुचित नमी की अवस्था में पौधों की खेतों में पारम्परिक कौशल से रोपाई की जाती है। वर्षा या अन्य कारण से बुवाई के समय यदि कतारें स्पष्ट न हों तो लकड़ी की "त्रिफाली" से 30 सेन्टी मीटर के अन्तराल से कतारें या ऊगंरे स्पष्ट कर लेते हैं।.

रोपणी से मंगाए गए पौधे सुबह के समय बड़े – बड़े गट्ठरों में ला कर खेत के किसी उपयुक्त स्थान पर रखवा दिये जाते हैं और बुवाई के पहले इनको ऊपर व नीचे से काट कर तैयार किया जाता है। ऊपर से काटने से रोपाई के तुरन्त बाद पौधों के पत्तों द्वारा नमी के उत्सर्जन में कमी और पौध लग जाने के बाद अधिक शाखाओं के फुटान को सुनिश्चित कर के अधिक पत्तियों की वृद्धि प्राप्त की जाती है। दूसरे सिरे से लगभग एक तिहाई जड़ काट देने से जड़ की लम्बाई रोपने के लिये बनाए जाने वाले छेद के मुताबिक (लगभग 20 सेन्टी मीटर) हो जाती है और इसमें भी अधिक पार्श्व जड़ों का फुटान आरम्भ हो कर उपलब्ध नमी का पौधों द्वारा यथेष्ट उपयोग सुनिश्चित हो जाता है। इससे भविष्य में खरपतवार भी कम पनपते हैं। तैयार पौधों को 400 – 500 पौधों की छोटी पूलियों में संवारा जाता है और एक हैक्टेयर में रोपने के लिये ऐसी लगभग 200 – 225 पूलियों की जरूरत होती है (चित्र 4.1)।

पौधों को काटने, छांटने, रोपाई के छेद तैयार करने, उनमें पौधे को ड़ालने और रोप दिये पौधों को दबाने के काम, एक साथ, पांच कर्मियों के एक कार्यदल द्वारा कुशलतापूर्वक बिना किसी गफलत के और आपसी सहभागिता के साथ पूरे किये जाते हैं। यह सोजत क्षेत्र में मेहन्दी की कृषि की अनूठी पारम्परिक विधि है और विशिष्ट श्रमिक कार्यदल ही रोपने के काम को सफलतापूर्वक सबके खेतों में करके अपनी आजीविका चलाते हैं। पूलियाँ बनाने वाला व्यक्ति ही खेत में जहाँ तक पौधों की रोपाई हो चुकी हो, उसके आगे तक पूलियाँ पहुँचाते हुए खेत में आवश्यक रोप की आपूर्ती का काम खत्म होने तक बनाए रखता है।

रोपने के लिये छेद एक व्यक्ति दो कतारों में एक साथ आड़े – तिरछे चलते हुए बनाता चलता है और इसके लिये स्थानीय औजार "हलवानी" काम में लिया जाता है। यह लोहे की छड़ से बना अंग्रेजी के अक्षर "टी" की शक्ल का औजार है जिसकी दोनों भुजाओं पर जोर ड़ाल कर इसकी सीधी तीखी छड़ को भूमि में दबा कर छेद बनाया जाता है। एक कतार में एक से दूसरे छेद की दूरी लगभग 20 सेन्टी मीटर (पौधे से पौधे की दूरी) रखी जाती है। हर कतार का छेद मानो दूसरी कतार में आधार वाले किसी त्रिभुज का शीर्ष होता है।

रोप के लिये तैयार छेदों में साथ ही साथ दो महिलाऐं श्रमिक एक – एक पौधा ड़ालती जाती हैं। इनके पीछे – पीछे एक पुरुष कर्मी लगभग 1.5 मीटर लम्बे व 5 सेन्टी मीटर व्यास के एक डंडे से रोपे गए पौधे को चारों ओर से ठोक कर मिट्टी को दबाता हुआ अपने पैर की ऐड़ी पर पौधे के पास की मिट्टी पर घूम कर उसको और भी अच्छी तरह से दबा कर पौधे की जड़ों का मिट्टी में ठीक सम्पर्क सुनिश्चित करता जाता है (चित्र 4.2)।

रोपने के दूसरे – तीसरे दिन खुरपी द्वारा हल्की गुड़ाई की जाती है जो वर्षा न होने की स्थिति में नमी संरक्षण के लिये महत्वपूर्ण होता है। खेत में खरपतवार कम करने के लिये समय – समय पर निराई – गुड़ाई जारी रखी जाती है।

कुशल श्रमिकों द्वारा की गई रोपाई प्रारम्भिक अच्छी नमी के कारण लगभग 80 – 100 प्रतिशत सफल होती है। रोपाई के 15 दिनों के अन्दर – अन्दर वर्षा का हो जाना मेहन्दी की सफल खेती के लिये वरदान होता है। वर्षा में इससे अधिक देरी होने से प्रति हैक्टेयर पौधों की संख्या और उपज में कमी का कारण होती है।

4 – अन्तःकृषि

किसी भी असिंचित फसल की भाँति मेहन्दी में भी अन्तःसस्य इसकी सफलता के लिये जरूरी है, खास करके पहले तीन वर्षों तक। पहले साल में देशी हल से जुताई और बाद के वर्षों में कस्सी या खुर्पी से गुड़ाई मिट्टी को भुरभुरा करके वर्षा जल संग्रहण के लिये जरूरी है ताकि पौधों का ठीक विकास हो जाए। वर्षा के तुरन्त पहले की गई निराई – गुड़ाई सर्वोतम होती है। पहले वर्ष में चार बार और बाद के वर्षों में दो – दो बार गुड़ाई पर्याप्त लाभकारी होती है। छोटे किसान यह कार्य अपने श्रम से ही करते हैं।

चित्र 4.1 : मेहन्दी के पौधों की कलमें तैयार करते श्रमिक

चित्र 4.2 : मेहन्दी के पौधों की कलमों की रोपाई का दृश्य

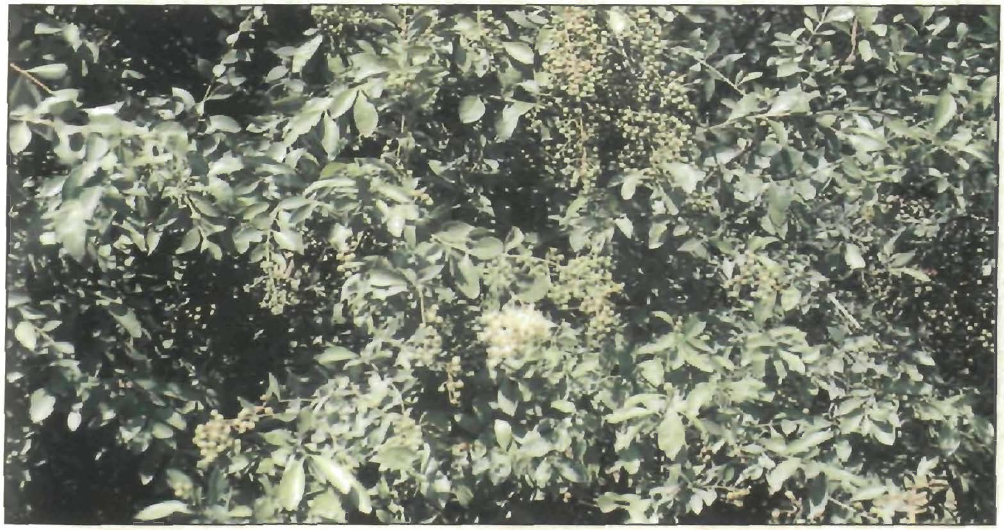

चित्र 4.3 : मेहन्दी (लासोनिया अलवा) की लहलहाती फसल

5 – सिंचाई

वर्षा न होने की स्थिति में सन्तोषप्रद उपज प्राप्त करने के लिये कभी – कभी किसान पानी उपलब्ध होने की स्थिति में सिंचाई भी करते हैं। वैसे सिंचित फसल की उपज का रंग कम रचने के कारण बाजार मूल्य कम मिलता है। किसानों द्वारा उर्वरक और सिंचाई को व्यापक रूप से न अपनाने के पीछे ऐसे आर्थिक कारण ही अधिक हैं। जहाँ कहीं सम्भव होता है, मेहन्दी की कटाई के उपरान्त किसान अतिरिक्त आमदनी के लिये अन्तःसस्य के रूप में गेहूँ की फसल लेते हैं।

6 – खेत में पौध संरक्षण

नई जमती फसल के लिये दीमक एक बड़ा विनाशकारी कीट है और भूमि में नमी की कमी की अवस्था में व्यापक नुकसान पहुँचाता है। दीमक से होने वाले नुकसान के ड़र से ही किसान अपने खेतों में खाद का प्रयोग नहीं करते भले ही कम उपज मिले। कुछ जागरूक किसानों ने दानेदार दवा फोरेट – 10 जी का प्रयोग करना शुरू किया है।

जुलाई से सितम्बर माह के दौरान पिछले दस वर्षों से लगातार सेमिलूपर सुण्डी से फसल में व्यापक हानि हो रही है। आसमान में बादल होने से इस कीट का प्रकोप अधिक होते देखा गया है। आसमान साफ हो जाने और तापमान में बढ़ोतरी होने पर इस कीट द्वारा होने वाले नुकसान से राहत मिलती है। इस कीट द्वारा उपज में सीधे 25 से 75 प्रतिशत कमी के अलावा कटाई में देरी भी हो जाती है। इस कीट का आंशिक प्राकृतिक नियंत्रण काबर यानि मैना परभक्षी चिड़िया द्वारा कर दिया जाता है। किसानों को पादप सुरक्षा के उपायों का समुचित ज्ञान न होना और उचित परामर्श सेवा उपलब्ध न होना, मेहन्दी की खेती की प्रमुख बाधा है।

7 – कटाई

दीपावली के आसपास अक्तूबर – नवम्बर में मेहन्दी की कटाई की जाती है। कटाई के समय आसमान का खुला होना अच्छा होता है। इस समय वर्षा हो जाने से पत्तों की गुणवत्ता खराब हो जाती है। फसल की कटाई के लिये उपयुक्तता का निर्णय पत्तों के हल्के पीलेपन से किया जाता है। टहनियों को काट कर एक दिन धूप में खुला छोड़ दिया जाता है और फिर बड़े–बड़े ढ़ेर लगा दिये जाते हैं। चौथे – पांचवे दिन, सूखी पत्तियों को टहनियों से बेवला (डंडे) द्वारा झाड़कर अलग करने के पश्चात बोरों में भर दिया जाता है।

8 – उत्पादन व लाभ

वर्षा की प्राप्ति और खेत के रख – रखाव पर निर्भरता के आधार पर प्रति हैक्टेयर सूखी पत्तियों का उत्पाद्न 600 से लेकर 3000 किलोग्राम तक हो जाता है। बहुत अच्छी वर्षा वाले कुछ वर्षों में तो 5000 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर तक सूखे पत्तों का उत्पाद्न हो जाता है बशर्ते कि खेत को खरपतवार

व नाशी कीट आदि से बचाया जाए (चित्र 4.3)। पत्तों का राचणी गुणवत्ता को प्रभावित किये बिना तीन साल तक सूखा भण्डारण किया जा सकता है।

मेहन्दी की सूखी पत्तियों का किसानों को न्यूनतम 20 रू प्रति किलोग्राम का भाव तो निश्चित रूप से मिलता ही है। चमकदार उत्तम राचने पत्तों के कारण राणावास क्षेत्र की उपज का अच्छा दाम किसानों को मिलता है। मेहदीं की खेती का आर्थिक विश्लेषण तालिका 4.2 में दिया है।

तालिका 4.2 : मेहन्दी की खेती का आर्थिक विश्लेषण

वर्ष	खर्च, रू							सूखे पत्तों	प्राप्ति, रू	
	खेत की तैयारी	रोपना	अन्तःसस्य	कटाई	बोरों का मूल्य	सुखाना और बोरों में भरना	कुलयोग	की उपज	सकल लाभ	शुद्ध लाभ
1	2890	21350	18680	2220	180	1780	47100	440	8900	−38200
2	0	0	8010	4450	360	3560	16370	890	17790	−36780
3	0	0	8010	4450	710	3560	16720	1780	35580	−17920
4	0	0	8010	4450	1070	3560	17080	2670	53380	+18380
5	0	0	8010	4450	1070	3560	17080	2670	53380	+36300
कुल	2890	21350	50720	20020	3390	16020	114350	8450	169030	+54680
							चौथे वर्ष से प्रति वर्ष शुद्ध लाभ			18380
							पाँचवे वर्ष से प्रति वर्ष शुद्ध लाभ			36300

इससे विदित होता है कि प्रथर्म वर्ष में खेत की तैयारी तथा रोपाई करने पर खर्च करना पड़ता है जो कि इसके बाद वाले वर्षों मे नहीं होता। इसलिये शुरू के वर्ष में किसान पर खर्च का अधिक बोझ रहता है। जैसे – जैसे समय गुजरता जाता है मेहन्दी की ऊपज बढ़ती जाती है तथा एक निश्चित समय के बाद (लगभग 2 – 3 वर्ष बाद) इसकी खेती पर होने वाला खर्च स्थिर हो जाता है तथा सकल लांभ बढ़ता जाता है। अतः कृषक को ऋण मुक्त होने के लिये लगभग 3 वर्ष तक का समय लग जाता है तथा सही मायने मे चौथे वर्ष से शुद्ध लाभ मिलने लगता है। शुरू के वर्षो में किसान को प्रथम वर्ष के बकाया खर्च के अतिरिक्त चालू वर्ष में मेहन्दी की फसल में अन्तःसस्य, कटाई, पत्तियों को सुखाने व बोरों में भरने के लिये खर्च करना पड़ता है। इस प्रकार किसान को तीसरे वर्ष के अन्त तक ही लागत की पूर्ती हो पाती है और अगले वर्ष (चौथे वर्ष) में जाकर ही शुद्ध लाभ मिल पाता है।

अकेले सोजत में मेहन्दी के पत्तों को पीसने की लगभग 300 फैक्टरियाँ हैं और क्षेत्र में कई मेहन्दी निर्यातक कारोबारी हैं। यहाँ के उत्पाद की राष्ट्रीय मांग भी काफी अच्छी है। सोजत व मारवाड़ ज़ंक्शन क्षेत्र में विकसित मेहन्दी उत्पादन की पारम्परिक कृषि विधि ने यहां के किसानों के लिये अच्छी आमदनी का एक आकर्षक स्रोत दिया है। निर्यात के बढ़ते बाजार व खेती की सफल विधि के कारण सूखी रेही जमीनों, खारे पानी और कम वर्षा से अन्यथा बर्बादी की ओर जाते इस क्षेत्र को पुर्नजीवन दिया है।

9 मरूस्थल में अधिक कृषि उत्पादन के लिए फसल चक्र का पारम्परिक ज्ञान

जबरदान कविया, तेजेन्द्र कुमार भाटी एवं रामपाल जांगिड़

उत्तर – पश्चिमी राजस्थान में रेतीली भूमि में पोषक तत्वों की कमी रहती है। इस क्षेत्र में खरीफ की फसलें जैसे बाजरा, ग्वार, मूंग, मोंठ, तिल, आदि मुख्य रूप से उगायी जाती हैं पशुधन अधिक होने से घासों का भी महत्व है। किसान विभिन्न फसल चक्र अपनाकर भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखते हैं जो अधिक उत्पाद्न लेने में मददगार है। इसके अलावा सदियों से किसान मिलवा खेती करते आ रहे हैं जिससे एक फसल नहीं पनपे तो दूसरी पनप सके। मिलवा खेती से भू तथा जल दोनों का संरक्षण तो होता ही है साथ ही मुख्य फसल की उपज प्रभावित नहीं होती और सह फसल से भी उपज मिल जाती है।

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी भाग में थार रेगिस्थान अपने पाँव पसारे हुए है। यहाँ की रेतीली भूमि में जल व पोषक तत्वों को रोक कर रखने की क्षमता नहीं के बराबर है। गर्मियों (अप्रैल से जून) में यहाँ हवायें बहुत तीव्र गति, (30 – 40 किलो मीटर प्रति घंटे) से बहती है तथा अपने साथ खेत की ऊपरी सतह की उपजाऊ मृदा उड़ा ले जाती है। विगत वर्षो में इस क्षेत्र में चरागाहों की भूमि में निरन्तर कमी आई है तथा किसानों में फसल उत्पादन की ओर रूझान बढ़ा है। समूचित फसल, जल एवं मृदा प्रबन्ध के अभाव में इस रेगिस्तान की मृदाओं की उर्वरा शक्ति तो निरन्तर कम हो ही रही है साथ ही इस तरह खेतों का उपजाऊपन प्रति वर्ष कम होने से फसल उत्पादन भी कम होता जा रहा है।

देश की आजादी के बाद जनसंख्या तथा पशु संख्या में वृद्धि होने से जुताऊ भूमि पर अतिरिक्त दबाव बढ़ गया है। जनसंख्या बढने से खेती योग्य भूमि का प्रति व्यक्ति जोत कम होने पर तथा भूमि को बार – बार जोतने से इसका उपजाऊपन प्रति वर्ष कम होता जा रहा है। इससे किसानों को वांछित फसल उत्पाद्न नहीं मिल पाता।

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी भाग में खरीफ में पैदा होने वाली मुख्य फसलें बाजरा, मोंठ, मूंग, ग्वार तथा तिल हैं। यहां के किसान सदियों से इन फसलों की अलग – अलग रूप से बुवाई करते आ रहे हैं तथा अपने खेतों का उपजाऊपन बनाये रखने के लिए कई सार्थक तरीके अपनातें आ रहे हैं। इस तरह का अनुभव उनको पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता आया जो कि फसल उत्पाद्न कार्यक्रम बन गया। इस मरूस्थल में कृषक तथा फसल दोनों ही रंग बदलते मौसम पर पूर्णतया निर्भर रहते हैं। अनियमित व अनिश्चित वर्षा इस भू भाग का निश्चित नियम है। नागौर, बीकानेर, जोधपुर, पाली तथा जैसलमेर जिलों

के किसान खेतों का उपजाऊपन बराबर बनाये रखते हुए टिकाऊ फसल उत्पाद्न के लिए उपयुक्त फसल चक्र अपनाते आ रहे हैं।

सदियों से किसान मिलवा खेती करता आ रहा है ताकि एक फसल नहीं पनपे तो दूसरी पनप सके। मिलवा खेती से भूमि का पूर्ण अंशदान होता है जिसमें एक तरफ तो बूंदो से होने वाले भुरकाव को रोकने में सहायता मिलती है तथा दूसरी तरफ भूमि में अधिक मात्रा में पानी प्रवेश कर पाता है। इस प्रकार मिलवा खेती से भू तथा जल दोनों का संरक्षण होता है साथ ही मुख्य फसल की उपज प्रभावित नहीं होती और सह फसल से भी उपज मिल जाती है। सूखा पड़ने की स्थिति में बाजरे को चारे के लिये काटा जा सकता है तथा दलहनी फसलों से दाना प्राप्त कर पूर्ण हानि से बचा जा सकता है उनको वैज्ञानिक दृष्टि से देखने पर बहुत ही उपयोगी दृष्टिगत हो रहे हैं। अतः उन फसल चक्रों को इनकी विशेषताओं व थार मरूस्थल की विभिन्न आन्तरिक परिस्थितियों के साथ उन जिलों के अलावा अन्य जिलों के किसानों के लिये प्रसारित किया जाय तो भूमि की उर्वरा शक्ति बनाये रखने व अधिक उपज प्राप्त करने में काफी सहायता मिल सकती है। इन पारम्परिक फसल चक्रों के साथ अगर उन्नत कृषि तकनीकों जैसे उन्नत किस्म, समन्वित पोषक तत्व, प्रबन्ध, जल – पौध संरक्षण तथा उन्नत कृषि यंत्रों के प्रयोग का उचित समन्वयन कर किसान अपने खेत से अधिक आमदनी प्राप्त करने के साथ – साथ उत्पाद्न क्षमता में भी वृद्धि कर सकते हैं। किसानों द्वारा मुख्य रूप से निम्नलिखित पारम्परिक फसल चक्र अपनाये जा रहे हैं :

1 – परती भूमि – ग्वार – बाजरा/बाजरा + मोंठ

जोधपुर जिले के किसान परती – ग्वार – बाजरा/बाजरा + मोंठ फसल चक्र अपनाते हैं। खेत को खाली रखने के बाद ग्वार की फसल लेते हैं। परती भूमि में वर्षात के मौसम में घास उगने से रेत के एक स्थान पर बन्धने से इसका कटाव रोककर वर्षा जल का संग्रहण करना है। दूसरे वर्ष बाजरे की फसल ली जाती है तथा तीसरे वर्ष उसी खेत में बाजरा + मोठ की बुवाई करते हैं। खरीफ में समय पर वर्षा होने पर पहली जुताई के साथ बाजरे की बुवाई करने से खेत से नमी अधिक नहीं उड़ती तथा बीजों का जमाव अच्छा होता है। देरी से वर्षात होने पर बाजरे व मोंठ की मिलवा खेती करते हैं।

2 – सेवण घास – ग्वार – बाजरा – मोंठ

बीकानेर जिले में खेतों में सेवण घास बहुतायत से होती है। खेत में हर वर्ष खरीफ की बुवाई करते रहने से सेवण घास बहुत फैल जाती है। सेवण घास वर्षा से प्राप्त जल का अधिकाधिक मात्रा में खेत की मिट्टी में गहराई तक सुरक्षित रखना तथा मृदा में कार्बनिक तत्व की मात्रा बढ़ाने से जल शोषण क्षमता बढ़ती है। 3 – 4 वर्ष बाद सेवण घास युक्त खेत में अन्य फसलों की बुवाई करने के लिए ट्रैक्टर चलित हैरो चलाकर इसके मूडों (बूझों) को तोड़ देते हैं तथा पहले वर्ष ग्वार की बुवाई करते हैं और बाद में दूसरे वर्ष बाजरा तथा तीसरे वर्ष मोंठ की फसल लेते हैं। मोंठ में सूखा सहन करने की क्षमता अधिक होती है। इसके पौधे भूमि पर फैलावदार जाल के रूप में बिछने से भूमि के कटाव को रोकते हैं तथा जड़ों में वायुमण्डल से नत्रजन को सस्यापन करने से भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। इस फसल चक्र

चित्र 5.1 : बाजरे की फसल का दृश्य

चित्र 5.3 : सेवण घास का दृश्य

चित्र 5.4 मोंठ की फसल का दृश्य

में सेवण घास व मोंठ का मेल होने से मोंठ का उत्पादन अच्छा होता है। किसान इस फसल चक्र को अपनाकर खरीफ में ग्वार 6 – 7 क्विंटल, बाजरा 5 – 7 क्विंटल तथा मोंठ 4 – 5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक की उपज ले लेते हैं। इसके अलावा सेवण घास से प्रति वर्ष 20 – 40 क्विंटल तक सूखा चारा भी मिल जाता है। इस फसल चक्र में सेवण घास मृदा में कार्बनिक तत्व की मात्रा बढ़ाने के साथ – साथ भूमि को वायु के कटाव से बचाती है। इस विधी में वर्षा जल भी भूमि में अधिक मात्रा में समाता है। इस तरह सेवण घास के साथ – साथ दलहनी फ़सलें जैसे मोंठ, ग्वार आदि से अच्छा उत्पाद्न भी प्राप्त होता है।

3 – परती भूमि – तिल – ग्वार – बाजरा

नागौर जिले के किसान अपनी सुविधानुसार खेत को लगातार 1 से 3 वर्ष तक (10 – 15 प्रतिशत) खाली रखते हैं तद्उपरान्त पहले वर्ष में तिल, दूसरे वर्ष में बाजरा व तीसरे वर्ष में ग्वार लेने की प्रथा है। यह विधि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित है। इस फसल चक्र में यह पाया गया है कि जमीन को परती छोड़ने से उसकी उर्वरा शक्ति बढ़ जाती है। भूमि परती रखने के बाद प्रथम वर्ष तिल लेने से अच्छा उत्पाद्न (4 – 5 क्विंटल प्रति हैक्टेयर) लिया जा सकता है। अगले वर्ष ग्वार की फसल का उत्पाद्न 8 – 10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर के साथ मृदा की उर्वरा शक्ति में भी वृद्धि होती है। किसान तीसरे वर्ष उसी खेत में बाजरे का अच्छा उत्पादन (8 से 10 क्विंटल प्रति हैक्टेयर तक) लेते हैं।

4 – परती भूमि – ग्वार/मोंठ/मूंग – बाजरा

पाली व नागौर जिले के किसानों में यह फसल चक्र प्रचलित है। उपरोक्त फसल चक्र में किसान प्रथम वर्ष में खेत को पशुओं को चराने के लिए खाली छोड़ देते हैं। दूसरे वर्ष में ग्वार या मोंठ या मूंग की फसल लेते हैं तथा तीसरे वर्ष में बाजरे की फसल ली जाती है।

5 – मूंग – तिल – ग्वार या ग्वार – तिल

पाली जिले में लघु व बड़े किसान उपरोक्त फसल चक्र अपनाकर खेती करते हैं। पाली जिले की भूमि में दोमट मिट्टी अधिक मात्रा में होने से किसान तिल को अधिक महत्व देते हैं।

6 – फसल चक्र में हरी खाद

पाली जिले में हरी खाद के रूप में अधिकतर किसान ग्वार की बुवाई करते हैं। फूल आने की अवस्था में ट्रैक्टर चलित हैरो चलाकर ग्वार को जमीन में दबा दिया जाता है। कुछ किसान ग्वार की जगह सनई / ढैंचा की खेती भी करते हैं जिसे फूल आने पर जुताई कर जमीन में मिला देते हैं। हरी खाद भूमि में कार्बनिक तत्व की मात्रा बढ़ाने में सहायक तो होती ही है साथ ही साथ अगली फसल के लिये 25 – 30 किलो नत्रजन की भी उपलब्धता बढ़ जाती है।

पाली जिले में सरदार समंद बान्ध के क्षेत्र में किसान खरीफ में ग्वार या तिल की फसल लेते हैं। बान्ध में उपयुक्त जल नहीं भरने पर तिल की फसल हो जाती है। बान्ध में सिंचाई योग्य जल की आवक होने पर ग्वार/तिल की खड़ी फसल में फूल आने पर उसकी जुताई कर जमीन में हरी खाद के लिए मिला देते हैं तथा रबी में गेहूँ या रायड़ा की बुवाई कर देते हैं।

६ पारम्परिक एवं नवीन कृषि यंत्रों की उपयोगिता तथा क्षमता बढ़ाने में स्थानीय तकनीकी ज्ञान का योगदान

हरपाल सिंह, जबरदान कविया एवं हरी लाल कुशवाहा

कृषि उत्पादन बढ़ाने में यंत्रों की अहम भूमिका रही है। थार मरूस्थल में जहाँ रेतीली भूमि की भरमार है और वर्षा होने के 2 – 3 दिन के अन्दर ही फसलों की बुवाई करना अनिवार्य हो जाता है कृषि यंत्रों की महत्ता और भी बढ़ जाती है। क्षेत्र की आवश्यकता तथा स्थानीय कारीगरों के ज्ञान के भण्डार के आधार पर कई पारम्परिक एवं उन्नत कृषि यंत्रों का विकास किया गया या देश के अन्यत्र भाग में प्रयोग में लिये जा रहे कृषि यंत्रों में आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर थार मरूस्थलवासियों के उपयोग के लिये उपलब्ध कराये जिससे उत्पाद्न में वृद्धि के साथ – साथ किसानों द्वारा कार्य निष्पाद्न में भी सहूलियत बढ़ी है। सघन खेती करने से खेतों में पनपने वाली झाड़ियों व घासों आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है।

थार मरूस्थल में कृषि उत्पादन बढ़ाने तथा पैदावार को स्थिर बनाये रखने में कृषि औजारों तथा उन्नत उपकरणों का बहुत महत्व है। आजादी के समय किसान मूलतः देशी तकनीकी व स्थानीय उपकरणों पर ही निर्भर था। इसलिये किसान सीमित भूमि में अधिक साधन लगाकर उत्पादन लेते थे। आजादी के बाद ट्रैक्टर तथा आधुनिक औजारों व उपकरणों की प्राप्ति से किसान कम समय में ज्यादा भूमि जोतकर अधिक से अधिक उत्पाद्न लेने में सफल हुए।

भूमि की जुताई में काम आने वाले उन्नत यंत्र, सिंचाई की नई विधियाँ एवं साधन, कीट नियत्रंण के लिये उन्नत उपकरणों एवं उपायों के साथ – साथ बीज की उन्नत किस्मों का कृषि उत्पादन बढ़ाने में बहुत योगदान रहा है। यही कारण है कि भारत आज पूरे विश्व में अन्न उत्पादन में दूसरे स्थान पर है तथा प्रति हैक्टेयर 2.85 टन अन्न का उत्पादन करके अमेरिका से भी आगे है जबकि 1960 – 65 में भारत विश्व के अन्य देशों से बड़ी मात्रा में अन्न का आयात करता था।

कृषि यंत्रों का अधिक से अधिक उपयोग करके सीमान्त, लघु तथा बड़े किसानों ने अन्न का उत्पाद्न बढ़ाया है। भारत की भौगोलिक स्थिति विचित्र है जहाँ रेतीली, दोमट तथा चिकनी भूमि के साथ–साथ विश्व का सर्वाधिक उपजाऊ क्षेत्र भी विद्यमान है। स्थानीय कारीगरों ने किसानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए तरह – तरह के परिवर्तन करके उन्नत कृषि यंत्रों/उपकरणों के उपयोग को बढ़ावा देकर उत्पादन में वृद्धि की है।

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी संभाग के शुष्क क्षेत्र के 11 जिलों में किसानों ने नये यंत्रों का

उपयोग कर उत्पाद्न में वृद्धि दर्ज की है। स्थानीय कारीगरों ने खेती में सर्वाधिक काम आने वाले कई' पारम्परिक एवं नवीन कृषि यंत्रों व औजारों का निर्माण किया है। जैसे –

(1) बुवाई के लिये एक या दो फाल वाला पारम्परिक बीजाणी यंत्र,

(2) बीज की बुवाई के लिये 8 नलियों का कीमा (बिजाणी यंत्र),

(3) सीड़ड्रिल (बीज बुवांई उपकरण) में ग्राऊण्ड व्हील को एक तरफ लगाना,

(4) बीज तथा उर्वरक की सही ऊराई के लिये सीड़ड्रिल के अन्दर की लाठ में परिवर्तन,

(5) खेत की तैयारी के लिये कुली (बक्खर) का निर्माण।

उपरोक्त यंत्र/औजार तकनीकी तथा व्यवहारिक दृष्टि से खरे होने से व्यापक रूप से कृषि कार्यों के उपयोग में लिये जा रहे हैं।

1 – बुवाई के लिये एक या दो फाल वाला बीजाणी यंत्र

पश्चिमी राजस्थान में पारम्परिक एक या दो फाल वाले बीजाणी यंत्र द्वारा बुवाई करने की प्रथा रही है। इस विधि में हल के पीछे वाले ढाँचे पर एक कीमा (फनल) लगाकर बीज की ऊराई की जाती है। एक फाल वाले साधारण हल को "देशी हल" एवं दो फाल वाले हल को "दुफन" के नाम से जाना जाता है [चित्र 6.1(अ,ब)]। हल खींचने के लिये एक जोड़ी बैल या फिर एक ऊँट की आवश्यकता होती है। दुफन के प्रयोग से एक साथ दो कतारों में बुआई की जाती है जबकि देशी हल से केवल एक कतार में ही बुवाई करना संभव है। इस विधि में खेत पहले से तैयार होने से कम गहरा ऊगंरा बनाकर बुवाई कर दी जाती है जिससे बीज के ऊपर मिट्टी कम चढ़ती है। इस प्रकार बुवाई करने पर तुरन्त वर्षा होने की स्थिति में रपड़ा या पपड़ी (रोड़) नही लगती तथा बीज का जमाव बराबर होता है और केवल 4 – 6 प्रतिशत तक ही कम जमाव होता है जबकि ट्रैक्टर चलित सीड़ड्रिल से बुवाई करने पर बीज के ऊपर ज्यादा मिट्टी चढ़ने और बुवाई के तुरन्त बाद वर्षा होने की स्थिति में रपड़े या पपड़ी के प्रभाव से जमाव में भारी कमी (40 – 60 प्रतिशत तक) आ जाती है। इस स्थिति से निपटने के लिये किसान दोबारा बुवाई करता है जो इस क्षेत्र की मुख्य समस्या है। इस समस्या के रहते ही किसान ज्यादा उपज देने वाली परन्तु महंगी किस्मों का प्रयोग करने में कतराता है। देशी हल की अपेक्षा ट्रैक्टर चलित सीड़ड्रिल के प्रयोग से कम समय में ज्यादा क्षेत्रफल में बुवाई करना संभव है। रेतीली भूमि की विशेषता है कि वर्षा होने के तुरन्त बाद नमी का ह्रास तीव्र गति से होता है। इसलिये किसान सीमित समय सीमा में ही अधिक से अधिक क्षेत्रफल में बुवाई की लालसा रखते हुए ट्रैक्टर चलित सीड़ड्रिल के प्रयोग से ही बुवाई करता है। इस कारण इस परम्परागत देशी हल/दुफन आधारित बीजाणी का प्रयोग पश्चिमी राजस्थान में करीब – करीब नगण्य हो गया है।

साधन संपन्न किसानों का रूझान सघन खेती की ओर बढ़ा है जिसका क्षेत्रीय वनस्पति व घास आदि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है तथा पशुओं के लिये, मुख्यतः अकाल के समय, वनस्पति व घास आदि की कमी महसूस होने लगी है। खेतों में झाड़ियों, घासों आदि की अनुपस्थिति से हवा द्वारा भूमि के कटाव की संभावना बढ़ जाती है। ऐसी स्थिति में चौड़ी मेंढ़–कूंड़ (रिज–फरो) बुवाई पद्धति जो कि तेज हवाओं के समकोण में हो भूमि के कटाव को कम करने के साथ–साथ वर्षा जल संग्रहण में भी सहायक हो सकती है।

2 – बीज की बुवाई के लिये आठ नलियों वाला बीजाणी यंत्र

ट्रैक्टर के प्रचलन एवं किसानों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर स्थानीय कारीगरों ने आठ नलियोंदार कीमे (बिजाणी) का निर्माण किया। यह कीमा सिद्धान्त रूप से बैलों एवं ऊँटों से चलाये जाने वाले हलों के पीछे लगने वाले कीमे का बड़ा रूप है। इस कीमे को कल्टीवेटर के ढाँचे पर लगाया जाता है। कीमे की संरचना इस प्रकार है कि बीज आठ नलियों में बराबर – बराबर मात्रा में गिरता है। इसमें किसान कीमे के पास ट्रैक्टर की तरफ पीठ रखता हुआ इस प्रकार बैठता है कि वह आसानी से कीमे में बीज या उर्वरक को हाथ से ड़ाल सके (चित्र 6.2)। कीमा कल्टीवेटर के साथ जुड़ा होने से इस छोटे यंत्र से ट्रैक्टर द्वारा कम समय में अधिक बुवाई हो जाती है। कीमे की कीमत महज 500 रू ही है साथ ही स्थानीय कारीगरों एवं कृषि यंत्र निर्माताओं के यहाँ आसानी से उपलब्ध भी रहता है।

कीमे के लिये मूलरूप से लोहे का ढाँचा बनाकर उसमें लकड़ी का कीमा एवं कोण बनाकर प्लास्टिक की नलियों को जोड़कर कल्टीवेटर के फालों (फरों ओपनर) से जोड़ दिया जाता है। मूलतः कीमे के दो भाग होते हैं पहला भाग जिसमें बीज गिराते हैं तथा दूसरा भाग जिसमें आठ द्वारक छिद्र बने होते हैं। छेदों के बीच एक तीखा उभरा हुआ भाग होता है। ऊपर के हिस्से में बीज सीधा इस नुकिले भाग पर गिरने से बराबर – बराबर मात्रा में एक साथ आठ छेदों से प्लास्टिक की नलियों द्वारा ऊगंरे (पंक्ति) में गिर जाता है तथा बुवाई हो जाती है।

3 – सीड़ड्रिल (बीजाणी) में एक तरफ ग्राऊण्ड व्हील लगाना

जोधपुर शहर में रातानाड़ा स्थित ओ.के.इजि. वर्क्स ने गेहूँ, बाजरा आदि फसलों की बुवाई के लिये सीड़ड्रिल (बीजाणी) को कल्टीवेटर के ऊपर एक फ्रेम पर लगाकर सफल परीक्षण कर किसानों के लिये बाजार में सीड़ड्रिल उपलब्ध करायी है। बाजार में प्रचलित सीड़ड्रिल में स्थानीय आवश्यकताओं तथा भौगोलिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए मुख्य रूप से दो परिवर्तन कर नया रूप दिया है। पहले परिवर्तन में सीड़ड्रिल में बाँयी ओर दांतो वाला पहिया (ग्राऊण्ड व्हील) लगाया और बीज वाले बक्से के अन्दर लगी लाठ को घुमाने के लिए सांखल (चैन) से जोड़ा गया है। ट्रैक्टर के चलते ही दाँतेदार पहियां घूमने से बीज मीटरिंग वाले खाचें में गिरकर प्लास्टिक की नली में होता हुआ ऊगंरो (पंक्ति) में गिरता रहता है।

दाँतेदार पहियें के साथ बीजाणी में लगी लाठ को घुमाने के लिय सांखल के एक तरफ होने से उस पर मिट्टी आदि नही गिरने से अधिक समय तक उपयोग में आती है (चित्र 6.3)। जबकि अन्य तरह की सीड़ड्रिलों में यह पहियां आगे या पीछे परन्तु बीच में लगा होने से मिट्टी सीधे सांखल के ऊपर गिरने से कम समय में ही क्षतिग्रस्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त पहियें के दांतों एवं सांखल के बीच मिट्टी आ जाने से ट्रैक्टर की शक्ति का भी ह्रास होता है।

दूसरे परिवर्तन के तहत सीड़ड्रिल में अलग – अलग छिद्रों वाली लोहे की पत्तियाँ लगाकर विभिन्न फसलों (गेहूँ, बाजरा, सरसों, चना आदि) की बुवाई की जा सकती है। इस प्रकार उपयुक्त छिद्रवाली पत्ती को लगाकर बुवाई करने से एक ही सीड़ड्रिल से अलग – अलग तरह की फसलों के बीजों को आसानी से बोया जा सकता है छिन्द्रों का व्यास इस तरह से है कि बिना ग्राऊण्ड व्हील को

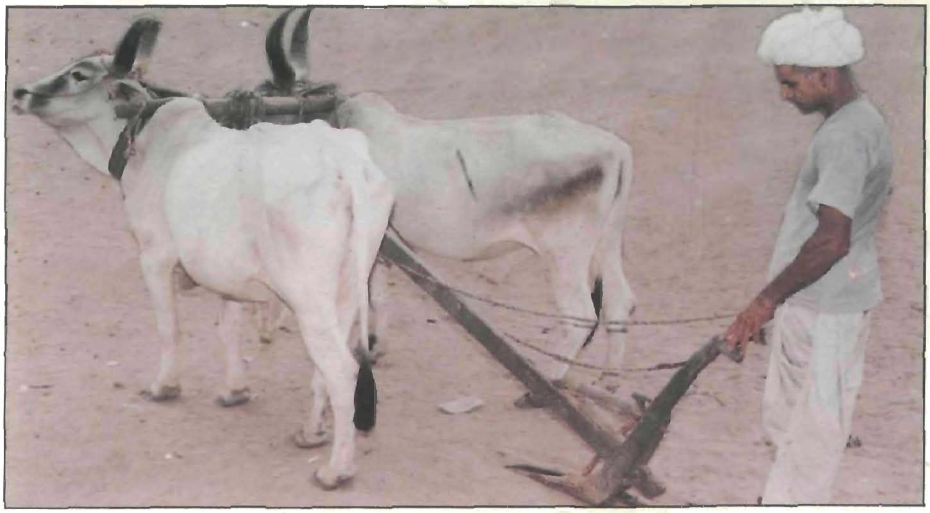

(अ) एक फाल वाला देशी हल

(ब) दो फाल वाला देशी हल ''दुफन''

चित्र 6.1 पश्चिमी राजस्थान के पारम्परिक बीजाणी यंत्र

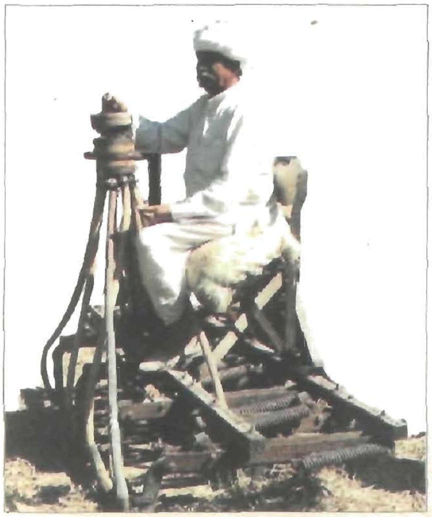

चित्र 6.2 : बुवाई के लिये आठ नलियों वाला कीमा (बीजाणी यंत्र)

चित्र 6.3 कल्टीवेटर के ऊपर लगी सीडड्रिल में एक तरफ लगा ग्राउण्ड व्हील

चित्र 6.4 सीडड्रिल की लाठ पर लगी स्प्रिंग का दृश्य

चित्र 6.5 : पश्चिमी राजस्थान में ट्रैक्टर चलित लोकप्रिय कुली (बक्खर)

बदले ही बीज की उपयुक्त मात्रा पंक्ति में गिरे। ऐसी 'नौ लाईनों' वाली सीड़ड्रिल की कीमत 12000 रूपये तक आती है। जुताई के समय सीड़ड्रिल के फ्रेम को कल्टीवेटर से हटा दिया जाता है। उपरोक्त सीडड्रिल की कम कीमत व मजबूत बनी होने से पाली, जोधपुर, नागौर आदि जिलों में समतल खेत होने से उपयोग बढ़ा है। इस यंत्र को तकनीकी दृष्टि से परखने पर उपयुक्त पाया गया। इस तरह स्थानीय कारीगरों ने अपनी कार्यकुशलता तथा स्थानीय तकनीकी ज्ञान का प्रयोग करके एक नये बहुउद्देशीय कृषि यंत्र का विकास किया है जिससे विभिन्न प्रकार के बीजों की बुवाई करने के अतिरिक्त खेत की जुताई भी की जा सकती है।

4 – बीज तथा उर्वरक की सही मात्रा में ऊराई के लिये बीज की पेटी में लगी लाठ में परिवर्तन

पाली जिले में अहमदाबाद – दिल्ली राष्ट्रीय मार्ग पर गाँव साडेंराव में रहने वाले अनपढ़ लेकिन कुशल कारीगर श्री नैनजी लुहार ने अपने वर्षो के अनुभवों के आधार पर सीड़ड्रिल की बीज की पेटी के अन्दर घूमने वाली लाठ (साफ्ट) में पुराने स्प्रींग (प्रयोग में लाये हुऐ) को इस प्रकार लगाया कि बीज व खाद अपनी जगह से खाचों के पास आ जाये और आसानी से प्लास्टिक की नलियों द्वारा कतारों में सही गहराई एवं उचित मात्रा में गिरता रहे। इसके साथ – साथ उर्वरकों में जो कुछ ढ़ेले होते हैं वह भी स्प्रीगं की रगड़ से आसानी से टूट जाते हैं। जिससे उर्वरक एवं बीज का प्रवाह प्लास्टिक की नलियों में नही रूकता। सीड़ड्रिल की बीज की पेटी में घूमने वाली लाठ पर स्प्रींग को इस तरह लगाया जाता है कि वह एक कनवेयर का कार्य करता है (चित्र 6.4)। साफ्ट के साथ स्प्रींग को एक बार लगाने पर बार – बार हटाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। परिवर्तित सीड़ड्रिल को कल्टीवेटर के ऊपर (फ्रेम) ढाँचे में लगाकर तैयार किया गया है। इसकी कुल कीमत 18000 रूपये है। यह सीड़ड्रिल खेती से जुड़े सरकारी संस्थानों तथा किसानों के यहाँ बहुत ही प्रचलित है।

5 – खेत की तैयारी के लिये ट्रैक्टर चलित कुली (बक्खर) का निर्माण

पश्चिमी राजस्थान में औसतन सालाना वर्षा बहुत कम (100 से 450 मि. मी.) होती है। अतः भूमि की नमी के ह्रास को रोकना अत्यन्त आवश्यक समझते हुए स्थानीय कारीगरों ने खेत की तैयारी के लिये ट्रैक्टर चलित कुली (बक्खर) का निर्माण किया (चित्र 6.5)। बक्खर ब्लेड को लकड़ी के पाट के साथ जोड़कर इस यंत्र को बहुउद्देशीय बना दिया।

पाली तथा नागौर में हल्की दोमट मिट्टी वाले क्षेत्रों में जुताई करने पर ढ़ेले उठते हैं। पाटा ढ़ेले तोड़नें के साथ–साथ मिट्टी को भुरभुरी बनाता है तथा इस भुरभुरी मिट्टी को दबाता भी है जिससे जमीन से नमी का ह्रास नहीं होता। बक्खर की ब्लेड की खासियत होती है कि वह जमीन को एक तह तक ही काटता है और उससे नीचे की जमीन वैसी की वैसी बनी रहती है। इस तरह खेत की तैयारी करने से समतल तह के ऊपर भुरभुरी मिट्टी ढ़की रहती है। बुवाई के समय इस तह पर बीज गिराया जाता है जो कि भलीभाँति अंकुरित होकर इस तह से नमी सोखता रहता है जिससे फसल अच्छी होती है। मध्यप्रदेश में काली मिटटी होने से इस तरह की कुली (बक्खर) बहुत ही लोकप्रिय एवं लाभदायक है। लेकिन मध्य प्रदेश में प्रचलित बक्खर के ब्लेड की चौड़ाई कम होती है। इसलिये बारानी खेती वाले क्षेत्रों में इस यंत्र का बहुत ही महत्व है। ट्रैक्टर की हाईड्रोलिक द्वारा जुताई की गहराई कम ज्यादा की जा सकती है।

19 प्याज भण्डारण की सुरक्षित पारम्परिक तकनीकें

जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह

पश्चिमी राजस्थान तथा महाराष्ट्र में प्याज की मुख्य फसल गर्मियों के प्रारम्भ में पककर बाजार में आती है। भण्डारण की उचित व्यवस्था न होने के कारण अधिकतर किसानों को प्याज सस्ते भाव पर बेचनी पड़ती है जिससे किसान लाभ से वचिंत रह जाते हैं। कई जगह प्याज को बोरों में भरकर या थड़ी लगाकर ऊपर से सिरकी से ढ़क देते हैं। यह सिरकी हर वर्ष नई बनानी पड़ती है। इस तकनीक द्वारा प्याज का भण्डारण करने में खर्च अधिक आता है इसके अलावा भण्डारण में प्याज की छीजन अधिक होती है। नागौर जिले के ड़ेगाना तहसील के गाँव थाँवला व पुष्कर के आस – पास वाले गाँव के किसानों तथा महाराष्ट्र में पूणे तथा नासिक क्षेत्र के किसानों ने प्याज भण्डारण की अल्पकालीन (5 – 6 माह) पारम्परिक विधि अपनाकर अच्छा लाभ कमाया है। इन विधियों से प्याज को 5 – 6 माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है।

भारत में प्याज की खेती प्रायः सभी राज्यों में की जाती है। प्याज उत्पादन में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है। हमारा देश विश्व में प्याज का 11 प्रतिशत उत्पादन करता है। देश में प्याज का सर्वाधिक उत्पादन गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक तथा आन्ध्र प्रदेश में होता है। वर्ष 1998 – 99 के आंकडों के अनुसार भारत में प्याज का कुल उत्पादन 54.7 करोड़ टन रहा। कुल उत्पादन का 60 – 70 प्रतिशत भाग इन्ही प्रदेशों में पैदा होता है। प्याज ऐसी नकदी फसल है जिसकी हमेशा मांग बनी रहती है। प्याज का मुख्य क्षेत्र नासिक (महाराष्ट्र) माना जाता है। प्याज का निर्यात खाड़ी व अन्य यूरोपीयन देशों को किया जाता है। खाड़ी के देशों में चरपरी प्याज ज्यादा पसन्द की जाती है जबकि यूरोपीयन देशों में कम चरपरी प्याज की खपत है। राजस्थान के जयपुर व इसके आसपास के क्षेत्रों में पीले रंग की कम चरपरी प्याज बहुतायत में होती है व इसको यूरोपीयन देशों में बहुत पसन्द किया जाता है। प्याज ऐसा कृषि उत्पाद है जिसे सलाद, सब्जी, मसाले आदि के रूप में तो प्रयोग में लिया ही जाता है दवाई के रूप में भी काम में लेते हैं जैसे गर्मियों में लू (गर्म हवा) से बचने के लिये तथा हैजे वगैरह के समय प्याज का सेवन लाभकारी रहता है।

प्याज भण्डारण की विभिन्न तकनीकें

1 – सिरकी के नीचे

राजस्थान के जोधपुर जिले के मथानिया क्षेत्र में प्याज भण्डारण की यह लोकप्रिय विधि है। इस विधि द्वारा प्याज दो प्रकार से भण्डारित की जाती है :

(क) लम्बा ढ़ेर (थड़ी) लगाकर : अप्रैल – मई में प्याज की कटाई के उपरान्त भण्डारण के लिये खेत में ऊँचाई वाले स्थान की सफाई कर समतल करने के बाद प्याज के सूखे पत्तों का बिछावन बना देते हैं तत्पश्चात इसके ऊपर प्याज का ढ़ेर (थड़ी) लगा देते हैं और सिरकी से ढ़क दिया जाता है [चित्र 7.1 (अ)]। ढ़ेर की चौड़ाई 1.5 – 2.0 मी. तथा लम्बाई आवश्यकतानुसार रखते हैं। ढ़ेर की ऊँचाई 1.0 – 1.2 मी. से ज्यादा नहीं रखी जाती। 125 क्विंटल प्याज का भण्डारण करने में लगभग 2000 रू. खर्च आता है। हर वर्ष नई सिरकी बनानी पड़ती है तथा भण्डारण में प्याज की छीजन अधिक होती है।

(ख) बोरों में भरकर : यह विधि मूलतः उपरोक्त विधि के अनुरूप ही है। इस विधि द्वारा प्याज का भण्डारण बोरों में भरकर किया जाता है [चित्र 7.1 (ब)]। 50 – 55 किलोग्राम वाले बोरों में प्याज को भरकर थड़ी इस प्रकार लगाते हैं कि भण्डारण के समय उत्पन्न ऊर्जा व नमी हवा द्वारा बाहर निकलती रहे। बोरों के ढ़ेर को सिरकी से ढ़क दिया जाता है। आवश्यकतानुसार भण्डारण की लम्बाई रखी जाती है लेकिन चौड़ाई 1.5 – 2.0 मी. से ज्यादा नही रखी जाती। औसतन ऊँचाई 1.0 – 1.2 मी. तक रखते हैं। इस विधि द्वारा 125 क्विंटल प्याज का भण्डारण करने पर लगभग 4500 रू. का खर्च आता है लेकिन भण्डारण में प्याज की छीजन उपरोक्त विधि की अपेक्षा थोड़ी कम होती है। तेज हवायें या अधिक बरसात से भारी नुकसान होने की संभावना रहती है। प्याज व सिरकी के बीच रिक्त स्थान कम होने से धूप का असर भी ज्यादा होता है। सिरकी तथा बोरे हर वर्ष बदलने पड़ते हैं इसलिये भण्डारण का खर्च अधिक आता है।

2 – किराड़ी में भरकर

किराड़ी का नीचे का आकार गोलाकार तथा ऊपर से झोंपीनुमा टोपी से ढ़का रहता है। किराड़ी के बनाने में खींप (लेप्टाडेनिया पायरोटैकनिका) का प्रयोग किया जाता है। खींप से बना यह ढाँचा स्थानीय भाषा में किराड़ी कहलाता है। इसमें ढाँचा खींप का तथा ऊपर की टोपी (झूँपी) खींप/मूजें की बनाते हैं। झूँपी को ढांचे पर इस तरह बनाकर ढकते हैं ताकि बरसात का पानी ढांचे से दूर गिरे। झूँपी बीच में से कोण की तरह उठी हुई तथा चारों ओर से गोल व ढ़लावदार बनाते हैं। किराड़ी का ढांचा बिखरे नहीं इसलिये इसे तीन जगह पर बातियों से बान्धते हैं। पहली बाती तले से 0.6 मी. ऊपर, दूसरी बाती 1 मी. पर तथा तीसरी बाती ऊपरी भाग पर बान्धते हैं। किराड़ी के गोलाकार (सिलैन्डरीकल) हिस्से का व्यास 2 मी. तथा ऊँचाई 2 मी. रखते हैं। किराड़ी की कुल ऊँचाई 2.0 – 2.5 मी. तक रखते हैं।

इसमें लगभग 8 – 10 क्विंटल प्याज का भन्डारण क़िया जा सकता है। आवश्यकतानुसार एक से ज्यादा किराड़ियाँ बनायी जा सकती हैं। किराड़ी का ढाँचा बनाते समय प्याज निकालने के लिये तले से थोड़ा ऊपर 0.6 X 0.6 मी. का छोटा निकास (द्वार) रखते हैं जिसे प्याज भरते समय बन्द कर देते हैं। किराड़ी केवल ऊपर से ही भरी जाती है तथा प्याज भरने के बाद झूँपी द्वारा ऊपर से ढ़क देते हैं। भन्डारण की अवधि समाप्त होने पर या फिर आवश्यकतानुसार प्याज निकालने के लिये दिये गये द्वार का प्रयोग करते हैं। किराड़ी का तला कच्चा ही रखते हैं। रेतीली सतह पर 15 – 30 से. मी. खेजड़ी या कपास की सूखी टहनियों का बिछावन बनाकर प्याज भरते हैं। किराड़ी को प्याज से भरकर ढांचे के चारों ओर लगभग 15 से. मी. मिट्‌टी चढ़ाकर पानी की अच्छी निकासी कर देते हैं ताकि बरसात का पानी किराड़ी/झूँपें के अन्दर न जा पाये अन्यथा प्याज के सड़ने का ड़र रहता है। किराड़ी बनाते समय इस बात का ध्यान रखना जरूरी है कि यह खुली जगह मे हो तथा वहाँ पानी इकट्‌ठा नहीं होता हो। प्याज के सुरक्षित भण्डारण के लिये चारों तरफ से हवा का प्रवाहित होना अति आवश्यक है। किराड़ी का व्यास 2 मी. से ज्यादा रखने पर भन्डारित प्याज खराब हो सकती है इसलिये इसका व्यास नहीं बढ़ाना चाहिये। किराड़ी की विशेषता ही यह है कि कम व्यास होने से हवा प्याज में उत्पन्न गर्मी को आसानी से बाहर निकाल ले जाती है और किराड़ी के अन्दर का तापमान कम हो जाता है जिससे प्याज खराब नहीं होती। दूसरे किराड़ी का आकार गोलाकार होने से किसी भी दिशा की हवा बहने पर भन्डारित प्याज से उत्पन्न गर्मी को हवा बाहर निकाल ले जाती है। इससे भण्डारित प्याज सुरक्षित रहती है। ढाँचें के ऊपर झूँपी (टोपी) रखी जाती है, टोपी व प्याज के बीच करीब 1 मीटर वायु का रिक्त स्थान रहता है। इससे प्याज भण्डारण में उत्पन्न गर्मी व वाष्पीकरण द्वारा भण्डारित प्याज से निकली नमी प्याज व टोपी के बीच के रिक्त स्थान में ऊपर की तरफ जमा हो जाती है और धीरे – धीरे बाहर निकल जाती है जिससे प्याज की छीजन कम होती है।

किराड़ी में प्याज भन्डारण की यह विधि नागौर तथा अजमेर जिलों में बहुत लोकप्रिय है। किराड़ी की कीमत मूलतः खींप की उपलब्धता पर निर्भर है। 2 मी. गोलार्ध तथा 2 मी. ऊँचे आकार की किराड़ी बनाने में लगभग 350 रू की लागत आती है।

3 – खींप मिश्रित ढाँचे (झूंपा) में भरकर

किराड़ी की तरह खींप मिश्रित ढाँचे का नीचे का भाग गोलाकार तथा ऊपर का भाग झोंपीनुमा बना होता है। गोल ढाँचा बाहर की तरफ खेजड़ी/बबूल/कपास की पतली टहनियों को छीदी – छीदी रखकर बनाते हैं तथा अन्दर की तरफ खींप छीदा – छीदा रखते है [चित्र 7.2 (अ,ब)]। किराड़ी की तरह झूँपी खींप या मूंज की बनाकर इस तरह से ढकते हैं कि बरसात का पानी ढाँचें से दूर गिरे। इस तरह के खींप मिश्रित ढाँचे में 20 – 25 क्विंटल प्याज का भन्डारण किया जा सकता है। आवश्यकतानुसार छोटा/बड़ा ढाँचा बनाया जा सकता है। आकार छोटा होने पर भन्डारण में प्याज का नुकसान कम होता है।

चित्र 7.1 : जोधपुर के मथानिया क्षेत्र में प्रचलित
प्याज भण्डारण की पारम्परिक विधि

(अ) झूँपे में भण्डारित प्याज

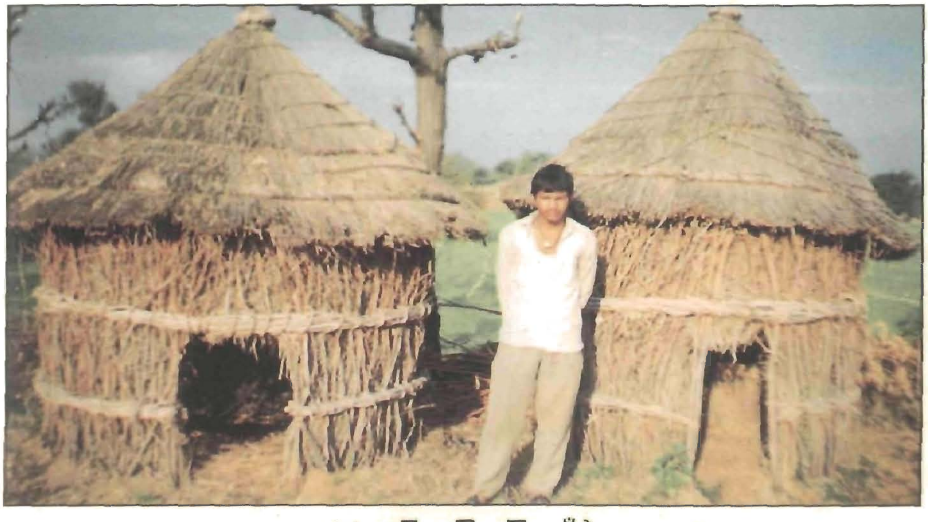

(ब) खींच मिश्रति ढाँचे

चित्र 7.2 (अ, ब) राजस्थान के नागौर व अजमेर जिले में
प्रचलित प्याज भण्डारण के लिये पारम्परिक ढाँचे

ढाँचा बिखरे नहीं इसलिए 3 बातियों से झूंपे को बांध देते हैं। प्याज ऊपर से भरकर झूँपी से ढ़क देते हैं तथा आवश्यकतानुसार प्याज निकालने के लिये बनाये गये द्वार का प्रयोग करते हैं। ढ़ाँचा खुले में बनाते हैं जिससे हवा का प्रवाह भली भाँति हो सके। किराड़ी की तरह इसका तला भी कच्चा ही रखा जाता है। ढाँचे के पास से बरसात के पानी का निकास सुनिश्चित करने के लिये ढ़ाँचे के चारों ओर लगभग 15 से. मी. मिट्टी चढ़ा देते हैं। नागौर जिले की ड़ेगाना तहसील में प्याज भन्डारण की यह बहुत ही लोकप्रिय विधि है। इस ढ़ाँचे को एक बार बनाकर करीब 4 – 5 वर्ष तक काम में लिया जा सकता है। लघु उत्पादकों के लिये यह विधि बहुत ही लाभदायक है क्योंकि भण्डारण में प्याज की छिजन कम होने के साथ – साथ भण्डारण की लागत भी कम आती है। एक बार ढ़ाँचा बनाने पर 4 – 5 वर्ष तक काम में लिया जा सकता है।

(क) बनावट : किराड़ी तथा झूँपे की बनावट गोल व लगभग एक जैसी होती है। आवश्यकतानुसार आकार छोटा या बड़ा कर सकते हैं। किसान छोटी किराड़ी या छोटी – छोटी कई झोंपियाँ बनाकर प्याज संग्रह करते हैं क्योंकि इससे प्याज कम खराब होती है।

4 – कवेलू की ओसरी (खपरेल की छत के ढ़ाँचें) के नीचे

राजस्थान की तरह महाराष्ट्र में भी पूणे तथा नासिक जिले के किसान प्याज भण्डारण के लिये पारम्परिक ढ़ाँचे बनाते हैं (चित्र 7.3)। सभी ढ़ॉचों में छत बनाने में कवेलू (खपरेल) का उपयोग किया जाता है। ढ़ाँचे उत्पादन तथा आर्थिक सम्पन्नता के आधार पर बनाते हैं। कवेलू की ओसरी के नीचे वाले भाग में निम्न सामग्री उपयोग में ली जाती है :

(अ) खुराड़े (लोहे) की जाली

(ब) कमची (लकड़ी) की ताटी

(स) भराटे (बांस) की ताटी

(क) बनावट : पूणे तथा नासिक जिलों में प्याज भण्डारण के पारम्परिक ढ़ाँचे बनावट में सैलून की तरह, के होते हैं। ढ़ाँचों की लम्बाई व आकार एक जैसा होता है और स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाता है लेकिन छत कवेलू (खपरेल) की बनायी जाती है। विभिन्न जगहों के पारम्परिक ढ़ाँचे देखने पर निम्न बाते सामने आई :

(i) ढॉचा खेत में उस जगह बनाते हैं जहाँ प्याज ढ़ोने के लिये वाहन आसानी से पहुँच जाये।

(ii) ढ़ाँचा प्रायः जमीन से 0.6 मी. उठे हुए चबूतरे पर बनाते हैं ताकि बरसात का पानी ढाँचे में प्रवेश न कर सके।

(iii) ढ़ाँचा लगभग 1.5 मी. चौड़ा तथा 2 मी. ऊँचा रखते हैं। कवेलू की छत लोहे/लकड़ी/बांस की जाली से बनाये गये ढाँचे 1 मी. ऊँची व दोनों तरफ से ढ़ाल रखते हुए बनाते हैं।

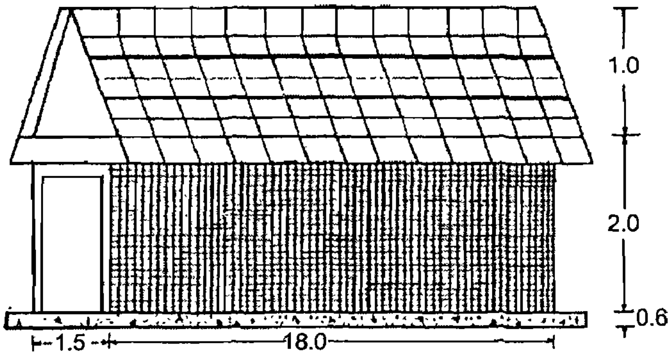

(अ) खुराड़े (लोहे) की जाली का ढॉचा

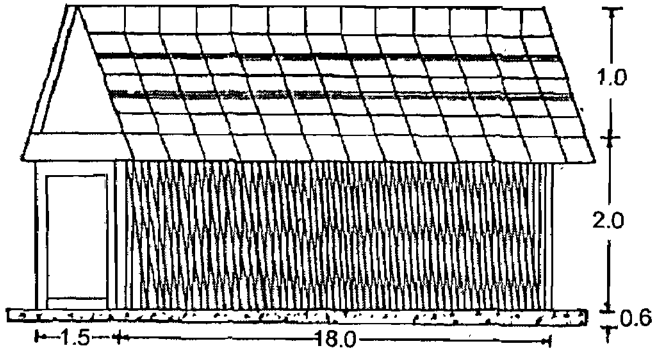

(ब) कमची (लकड़ी) की ताटी का ढॉचा

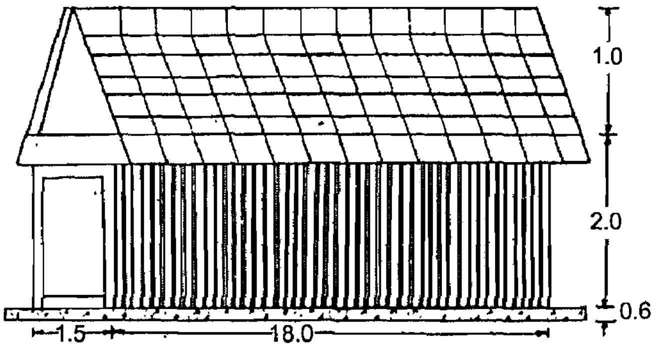

(स) भराटे (बॉस) की ताटी का ढॉचा

सभी नाप मीटर में

चित्र 7.3 : महाराष्ट्र के नासिक व पूणे क्षेत्र में प्रचलित प्याज भण्डारण के पारम्परिक तरीके

(iv) गर्मी में लू तथा बरसात में पानी की बौछार से प्याज को बचाने के लिये उस दिशा में ढ़ाँचें पर टाट या बांस की चिक लगाते हैं।

(ख) लागत : स्थानीय सामग्री की उपलब्धता के अनुसार पक्के ढ़ाँचे बनाते हैं। पक्का ढ़ाँचा बनाने में कीमत तो अधिक आती है लेकिन उसका उपयोग 15 – 20 वर्ष तक किया जा सकता है। लकड़ी की जाली तथा बांस की लाठियाँ लगाकर ढ़ाँचा बनाने की अपेक्षा लोहे की जाली वाले ढ़ाँचों पर खर्च अधिक आता है। 600 क्विंटल प्याज भण्डारण के लिये 18 मी. लम्बा, 1.5 मी. चौड़ा तथा 2 मी. ऊँचा ढ़ाँचा बनाना जरूरी होता है। विभिन्न प्रकार के ढ़ाँचे बनाने में निम्न लागत आती है :

	विवरण	दर (रू/इकाई)	लागत (रू)
(अ)	**खुराड़े (लोहे) की जाली लगाकर**		
(i)	पक्का चबूतरा, 19.5 मी. लम्बा 2 मी. चौडा, 0.6 मी. ऊँचा	–	10000/–
(ii)	खुराड़ी (चिकन जाली) दोनों तरफ 18.2 मी. लम्बी व 2 मी. ऊँची (कुल 36.5 मी. लम्बी व 2 मी. ऊँची) (36.5 X 2 = 73 वर्ग मी.)	100/वर्ग मी.	7300/–
	चौड़ाई में 1.5 मी. चौड़ी व 2 मी. ऊँची (3 वर्ग मी.)	100/वर्ग मी.	300/–
(iii)	दरवाजा 2 मी. ऊँचा व 1.5 मी. चौड़ा		500/–
(iv)	लोहे के एंगल (पोस्ट) 37.5 मि. मी. नाप – दोनों तरफ जाली के बाहर की सतह पर लगाने के लिये (कुल लम्बाई 37.8 मी., वजन 124 कि. ग्रा.)	16/–कि. ग्रा.	1984/–
	25 मि. मी. नाप की एंगल दोनों तरफ जाली के बीच में तथा नीचे लगाने के लिये (73 मी. लम्बी, वजन 80 कि. ग्रा.)	16/–कि. ग्रा.	1280/–
	25 मि. मी. नाप की एंगल 1.5 मी. की जाली पर लगाने के लिये (दोनो तरफ 77 नग, एक की 2 मी. लम्बाई, कुल लम्बाई 25.6 मी. तथा वजन 28 कि. ग्रा.)	16/– कि. ग्रा.	448/–
(v)	मजदूरी	–	500/–

(vi)	कवेलू की छत (कुल क्षेत्रफल 45.5 वर्ग मी.)	100/– वर्ग मी.	4550/–
		कुल लागत रू	26862/–
(ब)	**कमची (लकड़ी) की जाली लगाकर**		
(i)	पक्का चबूतरा 19.5 मी. लम्बा, 2 मी. चौड़ा तथा 0.6 मी. ऊँचा	–	10,000/–
(ii)	कमची (लकड़ी की खपचियाँ, 50 X 37.5 मि. मी. नाप) एक तरफ की लम्बाई 18.2 मी. तथा ऊँचाई 2 मी. दूसरी तरफ की लम्बाई 18.2 मी. तथा ऊँचाई 2 मी. (30 से. मी. में 5 खपची खड़ी व 5 खपची उसके ऊपर तिरछी कुल 1200 खपचियाँ)	6/खपची	7,200/–
(iii)	लकड़ी की बल्लियाँ (दोनों तरफ 36.5 मी. + 36.5 मी. = 73 मी. लम्बी व 100 मि. मी. मोटी)	16/मी.	1168/–
(iv)	कवेलू (खपरेल) की छत एक तरफ 22 मी. लम्बी व 1 मी. चौड़ी दूसरी तरफ 22 मी. लम्बी व 1 मी. चौड़ी कुल 44 मी. लम्बी व 1 मी. चौड़ी (44 वर्ग मी.)	120/वर्ग मी.	5280/–
(v)	मजदूरी	–	500/–
		कुल लागत रू	24,548/–
(स)	**भराटे (बांस) की ताटी**		
(i)	पक्का चबूतरा, 19.5 मी. लम्बा, 2 मी. चौड़ा व 0.6 मी. ऊँचा	–	10,000/–
(ii)	भराटे (बांस) की लकड़ी, 2 मी. लम्बी व 25 मि. मी. मोटी (गोल) (30 से. मी. मे 6 लकड़ियाँ लगती हैं) दोनों तरफ 18.2 मी. लम्बाई में 360 + 360 = 720 लकड़ियाँ	6/लकड़ी	4320/–
(iii)	लकड़ी की बल्लियाँ दोनों तरफ (73 मी. लम्बी तथा 100 मि. मी. मोटी)	16/मी.	1168/–
(iv)	मजदूरी	–	500/–

(v) कवेलू की छत
दोनों तरफ 19 मी. लम्बी व 1 मी. चौड़ी
(कुल 37.8 मी. लम्बी व 1 मी. चौड़ी)
क्षेत्रफल (37.8 X 1) = 37.8 वर्ग मी. 120/वर्ग मी. 4536/-

कुल लागत रू. 20524/-

ढ़ाँचा 1.5 मी. चौड़ा व 2 मी. ऊँचा होने से भण्डारित प्याज में उत्पन्न गर्मी व नमी हवा द्वारा बाहर निकल जाती है जिससे प्याज की छीजन बहुत कम होती है। प्याज और ढ़लावदार छत के बीच का रिक्त स्थान 1 मी. रहने से वहाँ इकट्ठी गर्म व नमीदार हवा आसानी से बाहर निकल जाती है इससे प्याज सुरक्षित रहती है। ढ़ाँचा पक्का बनाने पर लागत अधिक आती है लेकिन ढ़ाँचे की उम्र 15 – 20 वर्ष होने से सही मायने में भण्डारण का खर्च प्रति क्विंटल बहुत ही कम आता है। नासिक व पूणे क्षेत्र में प्रयोग में लिये जा रहे ये ढ़ाँचे बड़े किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी हैं।

5 – सावधानियाँ

(i) प्याज की किस्म का चयन करते वक्त छोटी आकार वाली प्याज की किस्म लगायें। क्योंकि अधिक मोटी व दलदार प्याज जल्दी खराब हो जाती है।

(ii) प्याज की खेती करते वक्त इस बात का विशेष ध्यान रखें कि खेत में पानी का ठहराव न हो अन्यथा भण्डारण में प्याज के खराब होने का ड़र रहेगा। प्याज में कम पानी दें तथा आवश्यकतानुसार थोड़े – थोड़े समय बाद सिंचाई करते रहें।

(iii) प्याज की कटाई होने पर छाया में सुखायें।

(iv) भण्डारण करते समय ध्यान रखें कि प्याज के साथ मिट्टी कम से कम हो। इसके लिये बड़ी जाली के लम्बे छलनों का उपयोग करते हैं। छलने का एक किनारा ऊँचा तथा दूसरा निचा रखते हैं ताकि प्याज स्वतः ही ढ़लान में लुढ़क जाये और मिट्टी जाली द्वारा नीचे गिर जाये।

(v) भण्डारण करने के कुछ दिन बाद प्याज से भरे हुए झूँपे में हाथ ड़ालकर देखें अगर पसीना लगता है तो प्याज को जल्दी बेच देना चाहिये अन्यथा प्याज खराब हो जायेगी।

मथानिया तथा पुष्कर क्षेत्र में किसान प्याज की खेती करते समय व कटाई के बाद भण्डारण के समय ऊपर दर्शायी गयी कई बातों का विशेष ध्यान रखते हैं। जिससे 90 प्रतिशत तक प्याज का भण्डारण सुरक्षित रहता है।

6 – प्याज भण्डारण की पारम्परिक तकनीकों की तुलना

प्याज भण्डारण की विभिन्न विधियों का तुलनात्मक विवरण तालिका 7.1 में दिया गया है।

तालिका का अवलोकन करने पर पता लगता है कि कवेलू की ओसरी (कवेलू की छत के ढ़ाँचे) जो प्रायः महाराष्ट्र के पूणे व नासिक क्षेत्र में पाये जाते हैं ज्यादा लाभदायक हैं। इस विधी द्वारा प्याज का भण्डारण करने पर प्रति क्विंटल कम खर्च के साथ – साथ छिजन भी कम होती है। ये ढाँचे प्रायः बड़े किसानों के लिये बहुत ही उपयोगी हैं जबकि किराड़ी व खींप मिश्रित ढ़ाँचे राजस्थान के नागौर व अजमेर जिलों में बहुत ही लोकप्रिय हैं तथा छोटे उत्पादकों के लिये उपयोगी हैं। प्याज भण्डारण की पारम्परिक तकनीक चाहे वह राजस्थान के किसानों द्वारा अपनायी जा रही हो या महाराष्ट्र के किसानों द्वारा उपयोग में ली जा रही हो ढ़ाँचे की चौड़ाई एक जैसी 1.5 – 2.0 मी. तक ही रखी गयी है। ढ़ाँचे की चौड़ाई इससे अधिक रखने पर भण्डारित प्याज सड़ने लगती है। ढ़ाँचे की चौड़ाई कम (1.5 . 2.0 मी.) रखने पर भण्डारित प्याज से गर्म व नमी युक्त हवा आसानी से बाहर निकल जाती है इसके अलावा भण्डारित प्याज व ढ़ाँचे की ऊपरी छत के बीच का रिक्त स्थान लगभग 1 मी. तक रहता है। भण्डारित प्याज से उत्पन्न गर्म व नमीदार हवा इस रिक्त स्थान में भर जाती है व धीरे – धीरे बाहर निकल जाती है इससे भण्डारित प्याज 5 – 6 माह तक सुरक्षित रहती है।

सदंर्भ

1 – जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह, वर्ष (1999) शुष्क क्षेत्र के पारम्परिक तकनीकी ज्ञान को सूचिबद्ध कर परिक्षण करना एवं उसका पुर्नसुधार : प्याज व लहशुन का सुरक्षित भण्डारण, केन्द्रिय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर।

2 – जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह, वर्ष (2000) प्याज के रख – रखाव की देशी पारम्परिक तकनीके। मरू कृषि चयनिका, जनवरी से अगस्त 2000, केन्द्रिय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, भाग चर्तुथ : अंक प्रथम, पृष्ठ : 20 – 22।

3 – जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह, वर्ष (2002) प्याज भण्डारण की सुरक्षित तकनीके। फल फूल, भा. कृ. अनु. प., नई दिल्ली, 25(1), पृष्ठ : 12 – 15 और 17।

तालिका 7.1 : प्याज भण्डारण की विभिन्न विधियों का तुलनात्मक विवरण

क्र. सं.	विधि	क्षमता क्विं.	ढॉचा बनाने की कुल लागत, रू.	ढाँचे की उम्र, वर्ष	प्रति क्विं. भण्डारण की लागत रू.	भण्डारण में छीजन, कि. ग्रा. प्रति क्विं.	विशेषता
1	किराड़ी	10	350	1	35	20 कि. ग्रा.	स्थानीय सामग्रीं जो सरलता से उपलब्ध होती है उपयोग में ले लेते हैं। कम खर्च तथा आसानी से बनाई जा सकती है। छोटे कृषकों के लिये उपयोगी।
2	खींप मिश्रित ढाँचा (झूँपा)	20	500	5	9	17–18 कि. ग्रा.	स्थानीय सामग्री जो सरलता से उपलब्ध हो, उपयोग में ली जा सकती है। कम खर्च तथा अधिक टिकाऊ है। छोटे किसानों के लिये उपयोगी है।
3	कवेलू की ओसरी (खपरेल की छत के ढाँचें)						बडे प्याज उत्पादकों के लिये उपयोगी। बनाने में स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाये तो लागत और भी कम हो सकती है। ढ़ाँचा कई वर्षों तक उपयोग में ले सकते हैं तथा आवश्यकतानुसार लम्बाई रखी जा सकती है।
	(अ) खुराड़े की जाली	600	26676	20	9.30	2 कि.ग्रा.	
	(ब) कमची की ताटी	600	24584	15	8.17	2 कि.ग्रा.	
	(स) भराटे की ताटी	600	20484	15	7.87	2 कि.ग्रा.	
4	सिरकों के नीचे						भण्डारण में छीजन अधिक होती है। गर्मी व वर्षा में अधिक हानि होने की सम्भावना रहती है। सिरके हर वर्ष नये बनाने पड़ते हैं तथा बोरे हर वर्ष नये बदलने पड़ते हैं।
	(अ) खुली थड़ी लगाकर	125	1960	1	15.68	30 कि.ग्रा	
	(ब) बोरों की थप्पी लगाकर	125	5000	1	33.68	27 कि.ग्रा.	

8 थार रेगिस्तान में अनाज भण्डारण की सुरक्षित पारम्परिक विधियाँ

हरपाल सिंह एवं जबरदान कविया

उत्तर – पश्चिमी राजस्थान में किसान अनाज के सुरक्षित भण्डारण के लिये पारम्परिक विधियाँ अपनाते हैं इसके लिये विभिन्न क्षमता के किणारे व कोठियाँ घर में सुरक्षित जगह पर पत्थर की चौकी पर बनाते हैं। किणारे व कोठी की अधिकतम ऊँचाई लगभग 2 मी. रखते हैं तथा तले व ऊपर का व्यास 1 मी. रखा जाता है। बाजरा, चना, मूंग व मोंठ का सुरक्षित भण्डारण करते समय विशेष सावधानियाँ बरती जाती हैं। किणारे व कोठी को स्थानीय सामग्री के उपयोग द्वारा झूँपी बनाकर ऊपर से ढ़क कर रखते हैं ताकि इन्हे धूप व वर्षा से बचाया जा सके।

थार रेगिस्तान (उत्तर – पश्चिमी राजस्थान) के किसान सदियों से ही प्रकृति की मार सहन करते आये हैं। प्रकृति से जूंझते हुऐ भी यहाँ का किसान कुछ न कुछ कृषि उत्पादन करता आया है। इस क्षेत्र मे कभी अनावृष्टि तो कभी अतिवृष्टि से अनिश्चितता हमेशा ही बनी रहती है। इन सभी बातों पर किसान का कोई बस नहीं चलता।

फसलों की बुवाई के पश्चात कीट, पक्षी तथा चूहें आदि फसल पनपने के साथ नष्ट करने में लग जाते हैं। प्रकृति का साथ होने से ही फ़सलें खेत से कटने के उपरान्त खलिहानों में पहुँचती हैं। खलिहान में चूहें अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। अनुमानतः फसल उत्पादन का 3 से 5 प्रतिशत भाग इस तरह ही नष्ट हो जाता है। किसान कृषि उत्पाद को खलिहान से घर लाकर पारम्परिक रूप से अनाज व दलहनी फसलों का भण्डारण कर कुछ राहत की सांस लेता है।

राजस्थान के पश्चिमी क्षेत्र के किसानों ने अनाज भण्डारण के लिये भौगोलिक परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के ढाँचों का निर्माण किया है। इन विशिष्ट पारम्परिक ढाँचों के प्रयोग से इस क्षेत्र के किसान अनाज का सुरक्षित भण्डारण करते आये हैं। पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में अनाज के सुरक्षित भन्डारण के लिये उपयोग में लिये जा रहे कुछ मुख्य – मुख्य ढाँचे इस प्रकार हैं :

1 – किणारा

अरणा (क्लेरोड़ेन्ड्रम विस्कोसम) की हरी टहनियों की मदद से बनाये गये ढाँचे को किणारा कहते हैं। किणारा बनाने में रोहिड़ा (टैकोमेला अन्डुलाटा) की पतली टहनियों की अपेक्षा गुणवत्ता की दृष्टि से अरणे को श्रेष्ठ मानते हैं।

(क) बनावट : अरणे की एक वर्ष की बढ़ोतरी वाली हरी टहनियों की जाली बनाते हुए ढाँचे को ढोलक का आकार देते हैं। ढाँचा बीच में चौड़ा व दोनो तरफ अनुपात से कम होता है। ढाँचे की ऊँचाई लगभग 2 मी. रखी जाती है तथा इसे प्रायः जनवरी – फरवरी में बनाया जाता है। ढाँचा बनाते समय नीचे वाले भाग में, तले से 0.6 मी. ऊपर, 15 से. मी. व्यास का एक छिद्र (निकासी द्वार) रखा जाता है ताकि ढाँचे के अन्दर भण्डारित अनाज को आवश्यकता पड़ने पर आसानी से निकाला जा सके। इस ढ़ोलक नुमा ढाँचे का ऊपर वाला भाग खुला रखते हैं जिसका व्यास लगभग 1 मी. होता है। इस निकासी द्वार का उपयोग ढाँचे की लिपाई – पुताई के अलावा अनाज भरने में भी किया जाता है। किणारे का आकार भण्डारण करने के अनुसार तय किया जाता है। 2 मी. ऊँचे व बीच में 1.5 मी. व्यास वाले किणारे की भण्डारण क्षमता लगभग 10 क्विंटल होती है।

इस लिपे – पुते किणारे को घर में किसी उपयुक्त स्थान पर रखा जाता है। किणारे को सतह से लगभग 30 से. मी. ऊँचे पत्थर के चबूतरे पर रखते हैं। यह पत्थर 1.2 मी. चौकोर या गोलाकार आकार का होता है तथा तीन पायों पर इस प्रकार रखा जाता है कि पत्थर की ऊँचाई सतह से लगभग 30 से. मी. ऊपर ही रहे ताकि भण्डारित अनाज पर सतह से मिलने वाली नमी का प्रभाव नहीं हो तथा चूहों से बचाव भी हो सके। ढाँचे को मजबूत बनाने के लिये बाहरी सतह की लिपाई की जाती है। बाहरी सतह की लिपाई के लिये तालाब की चिकनी मिट्टी 4 भाग, गाय का गोबर 1 भाग, पर्याप्त जल, डूरा (भणी) 1 भाग व गौमूत्र 5 लीटर का गाढ़ा घोल बनाकर काम में लेते हैं तथा अन्दर की सतह पर कन्डो की छनी हुई राख व गोबर बराबर मात्रा में तथा चिकनी मिट्टी का आठवॉ भाग व गौमूत्र 5 लीटर का पतला घोल बनाकर लेप कर देते हैं। इस तरह अरणे से बने ढाँचे की उम्र 50 वर्ष से भी अधिक मानते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर अन्यत्र ले जाया जा सकता है। किणारा बाहर से भीगने पर जल्दी खराब़ नहीं होता। किणारे को वर्षा व धूप से बचाने के लिये स्थानीय सामग्री जैसे आक (कैलोट्रोपिस प्रोसेरा) की टहनियों, खींप (लेपटाड़ेनिया पाइरोटैकनिका) तथा सिणिया (क्रोटोलारिया बुरह) व बाजरे की कड़वी की झूँपी बनाकर ऊपर से ढ़क देते हैं। अनाज बाहर निकालने व भन्डारण के समय झूँपी को आसानी से हटा दिया जाता है। आग लगने की स्थिति में किणारे में भरी सामग्री में क्षति कम होती है।

2 – कोठी

गॉवों में स्थानीय सामग्री से गोल या बोतल नुमा बनाये जाने वाले पक्के ढाँचे को कोठी कहते हैं। कोठी का आकार आवश्यकतानुसार रखा जाता है। किणारे की तरह कोठी का निर्माण पत्थर की चौकी पर ही किया जाता है।

(क) बनावट : कोठी बनाने में निम्न स्थानीय सामग्री का उपयोग किया जाता है :

गेहूँ का भूसा,	1 भाग
डूरा (भणी),	1 भाग
गधे की लीद,	1 भाग
डुई (काँठ),	2 भाग
मूड़ (मुर्रम),	2 भाग
गोबर,	4 भाग व
जल,	4 भाग

इस सामग्री को जल के साथ मिलाकर पैरों से रौंदकर कुछ समय के लिये छोड़ देते हैं। घर में सुरक्षित स्थान पर रखी 1.2 मी. चौकर पत्थर की चौकी पर प्रति दिन केवल एक घेरा/फर्मा (लगभग 22.5 से. मी. ऊँचा व 10 – 15 से. मी. चौड़ा) बनाते हैं। कई स्थानो पर किसान मूड़ (मुर्रम) की जगह बाजरे की डुई (काँठ) का उपयोग करते हैं तथा घेरे की मोटाई 5.0 – 7.5 से. मी. ही रखते हैं। कोठी बनाते समय पेदें से लगभग 30 से. मी. ऊपर किणारे की तरह ही कोठी से अनाज निकालने के लिये लगभग 15 से. मी. व्यास का छिद्र (निकासी द्वार) रखा जाता है तथा कोठी का ऊपरी भाग 1 मी. व्यास का खुला रखते हैं। इस तरह कोठी की अधिकतम ऊँचाई 2 मी. तक रखते हैं।

इस क्षेत्र में जहाँ भी संयुक्त परिवार हैं वहाँ एक से अधिक कोठियाँ बनाकर अनाज का भण्डारण करने की प्रथा रही है। अनाज की चोरी के भय से प्रायः कोठी आवासीय झूँपी के अन्दर या चौक में ही बनाई जाती है। चौक में बनाई गई कोठी को धूप व वर्षा आदि से बचाने के लिये स्थानीय सामग्री के उपयोग से झूँपी बनाकर ढ़क देते हैं जिसे आवश्यकता पड़ने पर हटा दिया जाता है। कोठी में मूंग, मोंठ तथा चने का अधिक समय तक भण्डारण किया जाता है लेकिन गेहूँ तथा बाजरे का भण्डारण कम अवधि के लिये ही किया जाता है।

3 – सावधानियाँ

किणारे व कोठी में अनाज का भण्डारण करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना अति आवश्यक है :

(i) भण्डारण अनुकूल मौसम में करना जरूरी है। वर्षा के मौसम में न तो भण्डारण करते हैं और न ही भण्डारित अनाज को ढाँचों से निकालते हैं। प्रायः मई – जून (जेठ) तथा अक्टूबर (असौज) के महीनों को इस दृष्टि से उपयुक्त मानते हैं।

(ii) भण्डारण करने में तिथियों का विशेष ध्यान रखा जाता है।

किणारे का ढांचा

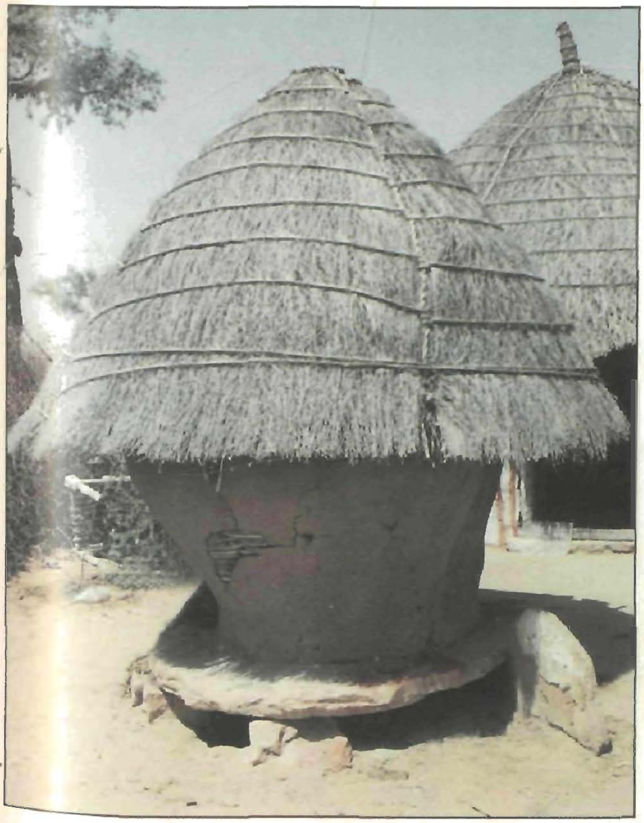

किणारा

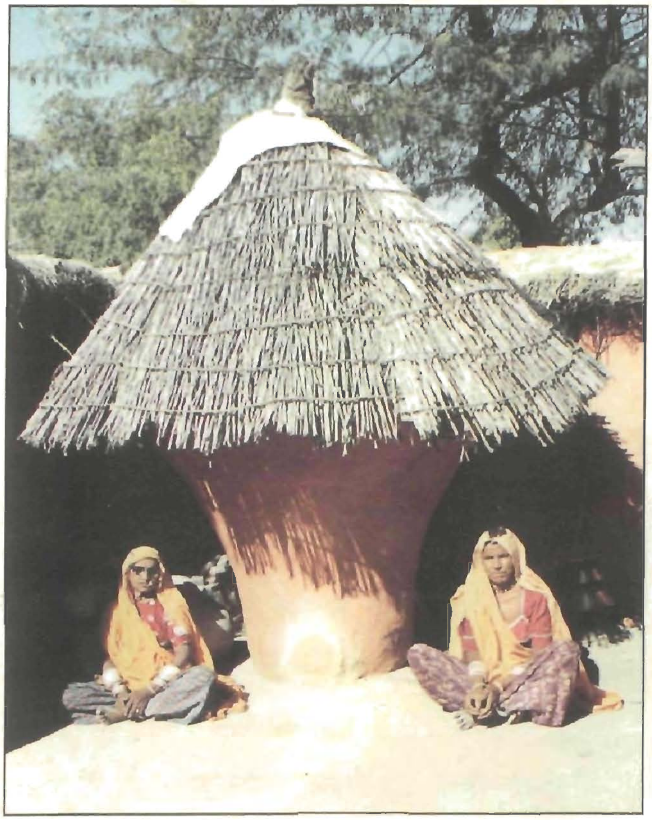

कोठी

चित्र 8.1 : उत्तर–पश्चिम राजस्थान में प्रचलित किणारे व कोठी में अनाज का सुरक्षित भण्डारण

(iii) भण्डारण करने से पहले ढाँचे में हल्की आग जलाते हैं ऐसा करने से भण्डारण के कीट उसमे छिपे होने पर मर जाते हैं।

(iv) नये तथा पुराने ढाँचों में भण्डारण करने से पहले अन्दर की सतह पर कन्डो की छनी हुई राख व गौमूत्र मिलाकर लेप कर देते हैं या गौमूत्र का छिड़काव करके सुखा लेते हैं।

(v) अनाज (गेहूँ, बाजरा) तथा दलहनी फसलों (मूंग, मोंठ, चना आदि) का भण्डारण करने से पहले 1 या 2 दिन तक तेज धूप में सुखा लिया जाता है तथा वान्छित नमी रखकर अगले दिन प्रातः अनाज को ढाँचे में भर दिया जाता है।

(vi) भण्डारण करने से पहले कोठी/किणारे के पेदें में कन्डो की छनी हुई राख की 7.5 से. मी. मोटी परत बिछाकर तथा उसके ऊपर बाजरे के डूरे (उपलब्धता के अनुसार) 15 से. मी. मोटी तह बनाकर निकासी द्वार को अच्छी तरह बन्द कर दिया जाता है।

(vii) भण्डारण करते समय किसान अनाज के साथ निम्नलिखित पदार्थ मिलाते हैं जिससे घुन आदि लगने की सम्भावना कम हो जाती है :

(अ) अनाज के ऊपर सरसों या अरन्डी के तेल की हल्की सी परत देना।

(ब) नीम की हरी पत्तियों को सुखाकर अनाज के साथ मिलाना।

(स) गेहूँ व बाजरे का भण्डारण करते समय कन्डो की राख छानकर अनाज में मिलाना तथा मूंग, मोंठ व चने के साथ बारीक बालू मिलाना।

(viii) कोठी / किणारे को पूरा नहीं भरकर लगभग 0.6 मी. खाली रखते हैं तथा निम्न उपचार किया जाता है :

(अ) मूंग, मोंठ व चने को कोठी में भरकर ऊपर से बारीक बालू की 0.6 मी. मोटी तह बनाकर दो दिन तक छोड़ देते हैं जिससे यह बारीक रेत धीरे – धीरे पेदें तक पहुँच जाये। कई ग्रामीण भण्डारण के साथ – साथ यह बारीक रेत पहले से ही मिला देते हैं तथा अन्त में अनाज के ऊपर 15 से. मी. मोटी रेत की परत रखी जाती है।

(ब) बारीक रेत की तह के बाद कन्डो की छनी हुई राख की 15 से. मी. मोटी परत रखी जाती है।

(स) किणारे व कोठी का ऊपरी भाग लगभग 7.5 से. मी. खाली रखा जाता है। इस खाली जगह में कड़वे तेल (सरसों, तारामिरा आदि) का दीपक जलाकर पत्थर की चौकी से ढ़क कर चारों ओर से गोबर आदि की लिपाई कर दी जाती है ताकि बाहर की नमी अन्दर प्रवेश न कर सके।

(ix) ढाँचे को धूप तथा वर्षा आदि से बचाने के लिये स्थानीय सामग्री खींप, आक, सिणिया व बाजरे की कड़वी से झूँपी बनाकर ढ़क दिया जाता है।

भण्डारण की उपरोक्त विधियों का वैज्ञानिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर सही पाया गया है। इन विधियों के उपयोग से अनाज का सुरक्षित भण्डारण कई वर्षो तक किया जा सकता है।

9 मरूस्थल में कैर के फलों का पारम्परिक उपयोग

जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह

कैर उत्तर – पश्चिमी राजस्थान के हर जिले में ओरण, आगोर, गोचर, परती भूमि तथा खेतों में बहुतायत से पायी जाने वाली झाड़ी है। कैर के फूल व कोमल टहनियाँ भेड़, बकरी व ऊँट के चरने के काम आती हैं व इसके अधपके फल अचार, चटनी व सब्जी बनाने के काम में आते हैं। गाँव के गरीब तबके की औरतें, बच्चे व बुजुर्ग कैर के फलों को तोड़कर बाजार में बेचकर अच्छा पैसा कमा लेते हैं। कैर के फलों की कड़वाहट दूर करने के लिये इन्हे स्वच्छ पानी, नमक के पानी या खट्टी छाछ में भिगोकर अथवा पानी के साथ उबालने, आदि की पारम्परिक विधियाँ अपनाते हैं। कैर की लकड़ी का उपयोग घरेलू तथा खेती के काम आने वाले औजारों में बहुतायत से होता है। इसकी लकड़ी की विशेषता है कि इसमें दीमक नहीं लगती।

कैर (कैपारिस ड़ेसीडुआ) थार मरूस्थल की बहुत ही उपयोगी झाडियों में से एक है। कैर पश्चिमी राजस्थान के नागौर, जोधपुर, बाड़मेर, जैसलमेर, बीकानेर, पाली, झुँझुनू आदि जिलों मे बहुतायत से पायी जाने वाली झाड़ी है। कम वर्षा वाले क्षेत्रों के साथ – साथ पथरीली व दोमट भूमि में कैर अधिक पनपता है। कैर के बारे में एक कहावत बहुत प्रचलित है :

अकाल ने कहा मरू प्रदेश में घेरा ड़ालूगाँ।
कैर ने कहा मैं दो बार फलूगाँ।।

अतः कैर अकाल में बहुत फलता – फूलता है। किसान प्रायः खेत की मेड़ो पर कैर को उगने देते हैं। इसके अलावा कैर की झाड़ियाँ गावों में नाडी व तालाबों के किनारे व उनके आस – पास गोचर तथा परती भूमि पर बहुतायत से पनपती हैं (चित्र 9.1)। कैर के फलों को चटनी, कड़ी, सब्जी व अचार आदि बनाने में उपयोग में लिया जाता है। कैर के फलों की बहुत उपयोगिता होने से स्वतः ही इसकी झाड़ियों को संरक्षण मिलता है। गर्मियों के मौसम में कैर की झाड़ियों में पक्षी तथा छोटे व बड़े जंगली जानवर शरण लेते हैं। इसके अलावा खेतों की मेड़ो व परती जमीन पर कैर की झाड़ियाँ होने से हवा द्वारा खेत की उपजाऊ मिट्टी का कटाव भी कम होता है। कैर की लकडी में दीमक नहीं लगने के कारण घरों में छत डालने में बहुत ही उपयोगी होती है। इसके अलावा कैर की लकड़ी का प्रयोग खेती में काम आने वाले छोटे यंत्रों/औजारों के हत्थे बनाने में भी होता है (चित्र 9.2)।

चित्र 9.1 कैर के फलों को तोड़ती ग्रामीण महिला

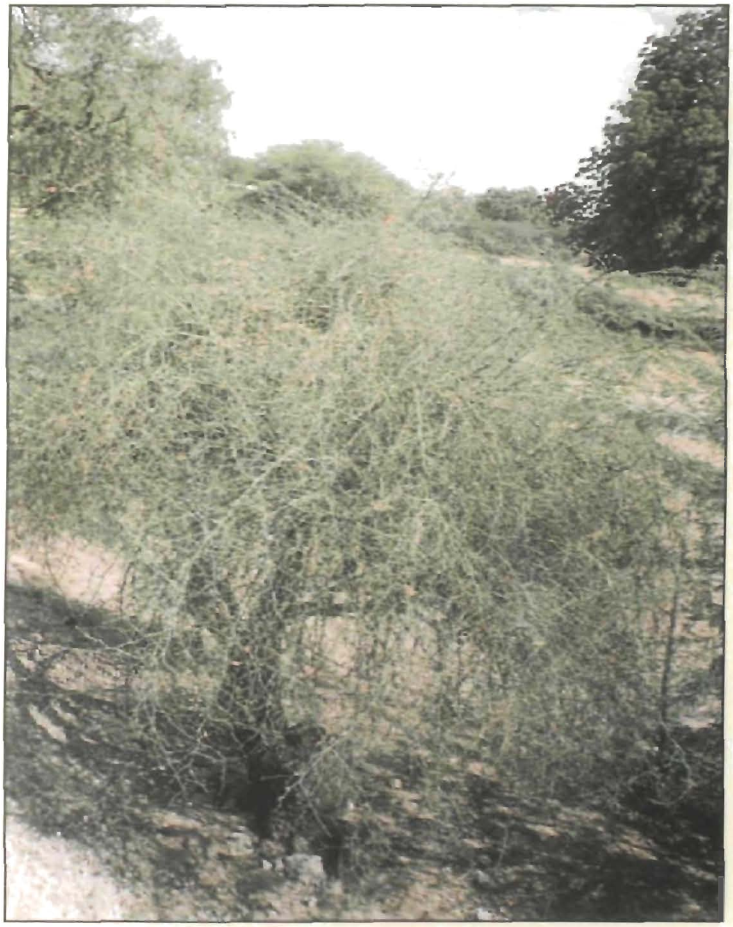

चित्र 9.2 कैर (कैपारिस डेसीडुआ)

हरे कैर की झाड़ियों की कोमल पत्तियों, मुलायम डन्ठल तथा गुलाबी व हरे रंग के फलों को खाकर भेड़, बकरी व ऊँट आदि पेट भरते हैं। घर में उपयोग के लिये हरे कैरों के फलों को कच्ची अवस्था में तोड़कर इकट्ठा कर लिया जाता है। इन कैरों के फलों को या तो सीधा ही बाजार में अच्छे भाव पर बेच दिया जाता है या फिर सुखाकर बेचा जाता है। इन फलों को तोड़ने का कार्य प्रायः गाँव के गरीब तपके के बच्चे, महिलायें व बूढ़े लोग ही करते हैं। कुछ ग्रामवासी इन इकट्ठे किये हुए कैरों के फलों को उबालकर राख में मिलाकर सुखा लेते हैं और कुछ समय तक भण्डारण करने के पश्चात बाजार में अच्छे भाव मिलने पर बेच देते हैं। हरे कैरों के फलों का औसतन भाव लगभग 20 – 25 रूपये प्रति कि. ग्रा. तक मिल जाता है जबकि सूखे हुए फलों की कीमत 80 – 100 रू. प्रति कि. ग्रा. मिलती है। शहरों में खासकर बड़े होटलों में सब्जी/अचार के रूप में कैरों के फलों का उपयोग बहुत ही प्रचलित है। इस प्रकार ग्रामवासी कैरों के फलों से अच्छा पैसा कमा लेते हैं। कुछ जगहों पर कैर की झाड़ियॉ बहुतायत में होने से पंचायत द्वारा कैरों के फलों को तोड़ने का ठेका भी दिया जाता है। कभी – कभी गाँव वालो को कुल मिलाकर एक मौसम में 20 – 30 हजार रूपये की आमदनी हो जाती है।

कैर के हरे फलों का स्वाद बहुत ही कड़वा होता है इसलिये कैरों के फलों का प्रयोग मधुमेह के रोगियों के लिये एक औषधि का कार्य करता है। सूखे कैरों का पाऊड़र बनाकर सेवन करने से पेट के दर्द को आराम होता है। कैरों के फलों का उपयोग सब्जी/अचार आदि बनाने के लिये इनकी कड़वाहट को दूर करना अनिवार्य होता है।

हरे, ताजे, अधपके/पके हुए कैर के फल क्योंकि कड़वे होते हैं अतः चटनी, कड़ी, सब्जी, अचार आदि बनाने के लिये इन फलों की कड़वाहट दूर करने के लिये निम्नलिखित पारम्पारिक विधियाँ अपनाई जाती रही हैं :

1 – स्वच्छ पानी में भिगोकर

कैरों के ताजे व छोटे फलों को मिट्टी के बर्तन में साफ पानी भरकर उसमे तीन दिन तक भिगोते हैं तथा हर रोज पानी बदलते रहना जरूरी होता है ऐसा करने से फलों की कड़वाहट काफी कम हो जाती है। लगभग दस दिन तक पानी में रखने के पश्चात कैर के फल मुलायम व कड़वाहट रहित होने पर इन्हें साफ व स्वच्छ पानी में धो लिया जाता है तत्पश्चात इन मुलायम फलों को साफ कपड़े पर सूखने के लिये ड़ाल देते हैं। सुखाने से पहले यह सुनिश्चित करना अनिवार्य होता है कि इन फलों की कड़वाहट नगण्य हो जाये। इसके पश्चात इन फलों की नमी उड़ने पर अचार बना लिया जाता है।

2 – खट्टी छाछ व पानी में भिगोकर

इस विधि में पानी की जगह खट्टी छाछ का प्रयोग किया जाता है। कैरों के फलों को 3 – 7 दिन तक मिट्टी के बर्तन में छाछ ड़ालकर भिगो देते हैं। कम से कम 3 दिन तक तो फलों को खट्टी छाछ में भिगोना अनिवार्य होता है। इसके पश्चात इन फलों को लगभग 7 – 10 दिन तक स्वच्छ पानी में भिगोये रखते हैं। तत्पश्चात इन फलों को साफ व स्वच्छ पानी से धो लिया जाता है और एक साफ मुलायम कपड़े पर सुखाने के लिये ड़ाल दिया जाता है। नमी उड़ने पर इन मुलायम फलों का अचार बना लिया जाता है।

3 – नमक युक्त पानी में भिगोकर

इस विधि में कैर के फलों को तीन दिन तक मिट्टी के बर्तन में स्वच्छ पानी भरकर भिगो देते हैं तथा हर दिन पानी बदलते रहते हैं। तत्पश्चात पानी में 50 ग्राम नमक प्रति कि. ग्रा. कैर के हिसाब से ड़ालकर 7 दिन इस नमक युक्त पानी में भिगोये रखते हैं। इसके पश्चात मुलायम व कड़वाहट रहित होने पर फलों को साफ पानी में धोकर एक स्वच्छ मुलायम कपड़े पर सूखने के लिये ड़ाल देते हैं। नमी के उड़ने पर अचार बना लिया जाता है।

4 – पानी में उबालकर

इस विधि में कैर के फलों को तेज आँच पर पानी में उबाल लिया जाता है। तत्पश्चात 10 – 12 घंटे तक मिट्टी के बर्तन में ठन्डा होने के लिये रख दिया जाता है। ठन्डा होने पर इन उबले हुऐ फलों को साफ पानी में धोकर सुखा लेते हैं तथा नमी उड़ने पर उपयोग में ले लिया जाता है।

शहरों में गृहणियाँ ज्यादातर हरे व ताजे फलों को ही पसन्द करती हैं। सूखे हुए कैर के फल ज्यादातर होटलों में प्रयोग में लिये जाते हैं। बड़े होटलों में पचकूटा (कैर, सांगरी, कुमटीया, अमचूर) की सब्जी बनाने में भी कैर के फलों को प्रयोग में लिया जाता है। पचकूटे की सब्जी बनाने का प्रचलन मरू प्रदेश में बहुत ही लोकप्रिय है तथा विवाह, त्यौहारों आदि पर इसका अपना ही विशेष महत्व है।

अचार बनाने के अलावा मुलायम कड़वाहट रहित कैर के फलों को मिर्च के साथ पीसकर चटनी भी बनाई जाती है। सूखे कैरों के फलों को तवे पर हल्का सा भून कर छाछ द्वारा कड़ी (करी) बनाने पर उसमें ड़ाला जाता है।

कैर का अचार बनाने के लिये कैर की मात्रा के अनुसार आवश्यक मसाले मिलाते हैं तथा चीनी मिट्टी, काँच की बर्णी/बर्तन में भरकर एक दिन तक रखा रहने देते हैं। दूसरे दिन तेल को उबालकर ठण्ड़ा करके अचार में ऊपर से ड़ाल देते हैं। तेल की मात्रा इतनी हो कि अचार भलीभांति इसमे डूबा रहे। कैर के फलों के साथ – साथ कच्चे आम के कटे हुए टुकड़े भी मिला देते हैं। इस प्रकार कैर का अचार तैयार हो जाता है।

तालिका 9.1 : कैर के फलों का अचार बनाने के लिये उपयोग में ली जाने वाली सामग्री का विवरण।

क्र.स.	सामग्री	मात्रा	टिप्पणी
1	कैर के फल	5 किलोग्राम	छोटे व ताजे
2	दानामेथी	100 – 1000 ग्राम	इच्छानुसार
3	सौंफ	10 – 500 ग्राम	
4	चिरायता	10 – 125 ग्राम	इच्छानुसार
5	लाल मिर्च	250 ग्राम	
6	हल्दी	50 – 100 ग्राम	
7	नमक	100 ग्राम	स्वादनुसार
8	हींग	1 ग्राम	
9	राई	100 – 250 ग्राम	
10	पीली सरसों	50 ग्राम	
11	गुड़	5 ग्राम	इच्छानुसार
12	तेल	2.5 कि. ग्रा.	
13	आम की केरी	1 – 5 कि.ग्रा.	

इस विधि के विपरीत मसाला युक्त कैर के फलों एवं कच्चे आम के कटे हुए टुकड़ों को बर्णी में भर लिया जाता है तथा उसके ऊपर से उबलता हुआ तेल ड़ालते हैं। इस विधि से बनाया गया अचार कम से कम एक वर्ष तक सुरक्षित रहता है और खराब नही होता। उबलता तेल ड़ालने से अचार में विद्यमान थोड़ी बहुत पानी की मात्रा वाष्प बनकर उड़ जाती है जिससे अचार का भण्डारण लम्बे समय तक किया जा सकता है। अचार बनाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ बरतनी अनिवार्य हैं :

(i) मेथी दाना पीसकर नहीं ड़ालना चाहिये अन्यथा अचार में कड़वापन आ जायेगा।

(ii) हींग का उपयोग कम मात्रा में करें। अधिक हींग ड़ालने से अचार में फफूदं लगने का ड़र रहता है।

(iii) अचार को फफूदं से बचाने के लिये 2 – 5 ग्राम गुड अवश्य ड़ालें।

(iv) अचार बनाने के लिये हरे, ताजे व छोटे आकार वाले फलों का ही प्रयोग करें।

१० पश्चिमी राजस्थान में पारम्परिक भोज्य पदार्थ "ढ़ोकली" बनाने की विधि

जबरदान कविया एवं हरपाल सिंह

थार रेगिस्तान के उत्तर – पश्चिमी जिलों में ढ़ोकली का पारम्परिक भोज्य पदार्थ अति लोकप्रिय है। गोल या चपटी ढ़ोकली गेहूँ या बाजरे के आटे की बनाते हैं। ढ़ोकली तैयार करने के लिये पीतल या मिट्टी के बर्तन के पेदें में पानी भरकर उसके ऊपर सांगरी या बाजरे के डंठलों के साथ 2 – 3 तह में रखकर ऊपर से बर्तन को ढ़ककर धीमी आंच पर पकने देते हैं। इस प्रकार भाप द्वारा पकी हुई ढ़ोकलियाँ बहुत ही स्वादिष्ट होती हैं जिसे घी के साथ भोजन के रूप में खाते हैं।

पश्चिमी राजस्थान में ग्रामवासी अपनी तरह से विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाते हैं। इन व्यजनों में ढ़ोकली भी एक विशेष व्यंजन है। ढ़ोकली एक स्वादिष्ट व पोषकतत्व युक्त व्यंजन है। ढ़ोकली कुछ विशेष अवसरों/मौसम में जल की भाप द्वारा एक विशेष विधि द्वारा पकाकर बनाई जाती है। इस वैज्ञानिक युग में इन पारम्परिक भोज्य पदार्थो का अपना ही महत्व है। दूर – दराज के गाँवों व ढ़ाणियों में इस व्यंजन की अपनी एक विशेष पहचान व लोकप्रियता है। इस तरह से पकाया गया यह भोज्य पदार्थ स्वादिष्ट होने के साथ – साथ पौष्टिक तथा शुद्ध (हाईजनिक) भी होता है।

ढ़ोकली प्रायः गेहूँ या बाजरे के आटे का प्रयोग कर मीठी व मिर्च युक्त (चटपटी) बनाने में निम्नलिखित सामग्री का उपयोग किया जाता है :

क्र.सं	सामग्री	गेहूँ के आटे की ढ़ोकली		बाजरे के आटे की ढ़ोकली	
		मीठी	मिर्चदार	फीकी	मिर्चदार
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
1.	आटा	2 कि.ग्रा.	2 कि.ग्रा.	2 कि.ग्रा.	2 कि.ग्रा.
2.	गुड़/शक्कर	700–1000 ग्राम	–	–	–
3.	मिर्च	–	25 ग्राम	–	25 ग्राम
4.	खार (पापड़)	–	40 ग्राम	–	40 ग्राम
5.	नमक	–	40 ग्राम	20–40 ग्राम	20–40 ग्राम
6.	धनिया (साबुत)	–	25 ग्राम	–	25 ग्राम
7.	लहसुन	–	50–100 ग्राम	–	50–100 ग्राम

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)
8.	जीरा	–	25 ग्राम	–	25 ग्राम
9.	अजवाइन	–	20 ग्राम	–	20 ग्राम
10.	हल्दी	–	10 ग्राम	10 ग्राम	10 ग्राम
11.	अदरख	–	50 ग्राम	–	50 ग्राम
12.	क्षमतानुसार तेल या घी	50 ग्राम	50 ग्राम	50 ग्राम	50 ग्राम
13.	जल	2 लीटर	2 लीटर	2 लीटर	2 लीटर
14.	बर्तन (10 लीटर क्षमता का पीतल/मिट्टी का गोल व चपटी तलीदार)				
15.	बाजरे के डंठल 20–25 सेन्टी मीटर लम्बे टुकड़े / गेहूँ का बड़ा भूसा/सांगरी				

ढ़ोकली बनाने की विधि

मीठी ढ़ोकली बनाने के लिए गुड़ या शक्कर (क्षमता व स्वाद के अनुसार) का पानी में घोल बनाकर इस घोल से आटा इस प्रकार मांड़ते हैं कि आटा सख्त ही रहे। मंड़े हुए आटे से गोल व चपटी, (हथेली के आकार की) ढ़ोकली बनाई जाती है। फीकी/चटपटी ढ़ोकली बनाते समय गुड़ / शक्कर का उपयोग नहीं किया जाता। ढ़ोकली बनाते समय तेल या घी का प्रयोग हथेली पर किया जाता है जिससे आटा हाथों पर न चिपके। ढ़ोकली के बीचों – बीच एक छोटा छेद कर दिया जाता है तथा इन ढ़ोकलियों को अलग बर्तन में रखते जाते हैं।

गोल व चपटी तली वाले पीतल या मिट्टी के बर्तन में पहले पानी भरते हैं। इस पानी में बाजरे के 20–25 सेन्टीमीटर लम्बे डंठल इस प्रकार रखते हैं कि बिछावन/तह सी बन जाये। इस तह के ऊपर ढ़ोकली रखते हैं। ढ़ोकली की तह के ऊपर फिर एक बाजरे के डंठलों की तह बना देते हैं और उसके ऊपर फिर ढ़ोकली की तह देते हैं। यह क्रम (3 – 4 तह) तब तक जारी रहता है, जब तक कि बर्तन ऊपर तक न भर जाये। सबसे ऊपर ढ़ोकली की तह रखी जाती है। गर्मियों में बाजरे/बरू घास के डंठलों की जगह खेजड़ी (प्रोसोपिस सिनेरेरिया) की फलियों (सांगरी) का उपयोग किया जाता है। ढ़ोकलियॉ सांगरी के प्रयोग से अधिक स्वादिष्ट बनती हैं।

बर्तन में ऊपर तक ढोकलियाँ भरने के बाद ढ़क्कन से ढ़ककर धीमी आँच पर रख दिया जाता है। 45 मिनट तक बर्तन को आग पर रखने से ढोकलियाँ पानी की भाप द्वारा पक जाती हैं। पकने की अवस्था में ढ़ोकलियों की ऊपरी तह पर छोटे – छोटे पानी के बुल – बुले दिखाई देने लगते हैं तब समझ लेना चाहिए कि ढ़ोकलियाँ पककर तैयार हो गई हैं। इस अवस्था में बर्तन को आँच से उतारकर 5–10 मिनट तक रखा रहने देते हैं ताकि ढ़ोकलियाँ भाप द्वारा भलीभाँति पक जायें। ढ़ोकलियों का सेवन करने के लिए आवश्यकतानुसार घी का उपयोग किया जाता है। बाजरे की फीकी ढ़ोकलियों में आवश्यकतानुसार घी तथा शक्कर को मिलाकर चूरमा बनाकर खाते हैं।

११ पश्चिमी राजस्थान के पारम्परिक औषधीय पौधे

सुरेश कुमार एवं फरज़ाना परवीन

पश्चिमी राजस्थान की जलवायु विविध औषधीय पौधों की वृद्धि के साथ – साथ इनकी खेती के लिये भी अनुकूल है लेकिन इन पौधों की व्यापक खेती के प्रयास बहुत कम पैमाने पर किये गये हैं। अधिकतर पौधे जो प्राकृतिक रूप से विभिन्न स्थानों पर उगते हैं वहीं से एकत्रित कर लिये जाते हैं। आदिवासी जो पारम्परिक तौर से वनस्पतियों से जुड़े हैं वह इनका प्रयोग करते हैं एवं अपना भोजन और औषधि वनों से ही प्राप्त करते हैं। थार मरूस्थल में उगने वाले औषधीय पौधें जोड़ो के दर्द, श्वांस रोग, रक्त में कौलेस्ट्रोल की मात्रा कम करने, स्मृतिवर्धक टौनिक के रूप में; दमा एवं श्वांस रोग, शारीरिक दुर्बलता, नपुंसकता, यौन सम्बन्धी रोगों एवं पेट की विभिन्न बीमारियों को दूर करने में सहायक हैं।

भारत वर्ष में औषधीय पौधों के उपयोग का इतिहास बहुत प्राचीन है। औषधीय पौधों के उपयोग का वर्णन ऋग्वेद में भी मिलता है। प्राचीन ग्रंथ सुश्रुत सहिंता और चरक सहिंता में भी चिकित्सीय गुणों का वर्णन मिलता है। बौद्धकाल में औषधीयों के ज्ञान क्षेत्र में काफी विकास हुआ और औषधीय पौधों की खेती आरम्भ की गई। ब्रिटिश फार्माकोपिया के अनुसार लगभग तीन चौथाई औषधीय पौधे प्राकृतिक रूप से भारत में उगते हैं और 7500 जंगली वनस्पतियाँ औषधि के रूप में काम में ली जाती हैं। वर्तमान युग में विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों जैसे आयुर्वेद, युनानी, सिद्धा में पौधों का प्रयोग होता है। आधुनिक चिकित्सा में भी लगभग 50 प्रतिशत औषधीयों में पौधों से प्राप्त रासायनिक तत्व होते हैं। पश्चिमी राजस्थान की जलवायु विविध औषधीय पौधों की वृद्धि के साथ – साथ इनकी खेती के लिये भी अनुकूल है लेकिन इन पौधों की व्यापक खेती के प्रयास बहुत कम पैमाने पर किये गये हैं। अधिकतर पौधे जो प्राकृतिक रूप से विभिन्न स्थानों पर उगते हैं वहीं से एकत्रित कर लिये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वैद्यों की संख्या भी कम है जो औषधीय पौधों का सीधा उपयोग करना जानते हैं। आदिवासी जो पारम्परिक तौर से वनस्पतियों से जुड़े हैं वह इनका प्रयोग करते हैं एवं अपना भोजन और औषधि वनों से ही प्राप्त करते हैं।

पश्चिमी राजस्थान का क्षेत्र मरूस्थल प्रकृति का होने के कारण यहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक स्थिति भी खराब है क्योंकि फसलोत्पादन बहुत कम होता है। इस क्षेत्र में औषधीय महत्व के पौधे लवण व सूखे के प्रतिरोधी भी होते हैं। स्थानीय लोग अपनी भाषा में हर पौधे को पहचानते हैं लेकिन अशिक्षा एवं जानकारी के अभाव में किसानों को पूर्ण लाभ नही मिलता। रेगिस्तानी क्षेत्र के कुछ मुख्य औषधीय पौधों जिनको बिना किसी अधिक परिश्रम के खेतों में लगाया जा सकता है उनकी जानकारी सारणी 11.1 में दर्शायी गयी है।

सारणी 11.1 : पश्चिमी राजस्थान में उपलब्ध पारम्परिक औषधीय पौधे एवं उपयोग

पादप का स्थानीय नाम एवं उपलब्धतता	पादप का वनस्पतिक नाम	उपयोग	विवरण	प्रसारण की सम्भावना
(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
1– "गूगल" बाड़मेर, जोधपुर एवं जैसलमेर में बहुतायत में पाया जाता है।	कोमीफोरा वाईटाई	जोड़ों का दर्द, श्वांस रोग, रक्त में कौलेस्ट्रोल की मात्रा कम करने में, गूगल के गोंद का धुंआ गले एवं नाक के रोग में, अगरबत्ती एवं धूप बत्ती बनाने में	● गूगल का गोंद जोड़ों के दर्द तथा रक्त में कौलेस्ट्रोल की मात्रा कम करने के लिये खाया जाता है। ● गोंद को कोयले पर रखकर गरम करते हैं। धुऐं को सांस द्वारा अन्दर लेने पर श्वांस रोग तथा नाक एवं गले के रोगों में कमी होती है।	कटिंग एवं बीज
2–"शंखपुष्पी" जोधपुर तथा उत्तर पश्चिमी राजस्थान में बहुतायत में पाया जाता है।	कोनवोवलस माइक्रोफाइलस	स्मृतिवर्धक टौनिक के रूप में, दमा एवं श्वांस रोग में। पंचाग रस में	● पूरे पौधे को पानी में उबाल कर क्वाथ/काढ़ा बनाकर उपयोग किया जाता है। ● दमा एवं श्वांस रोग में पत्तियों का धुंआ श्वांस द्वारा अन्दर लेने पर रोग दूर होता है।	बीज
3– "चामकस" बाड़मेर, जोधपुर, जैसलमेर, पाली एवं बीकानेर में पाया जाता है	कोरकोरस डिप्रेसस	शारीरिक दुर्बलता दूर करने, नपुसंकता दूर करने में, यौन रोग सूजाक दूर करने में, बुखार, दस्त रोग एवं यकृत रोग में, पाच्य शक्ति बढ़ाने में।	● पत्तियों को छाया में सुखा कर पाउडर तैयार करके आटा व गुड़ के साथ हलवा बनाकर खाया जाता है। ● पत्तियों का पाउडर प्रातः दूध के साथ लिया जाता है। ● शरीर के किसी भी हिस्से में दर्द हो तो पत्तियों का चूरा नमक के साथ मिलाकर उस स्थान पर लगाते हैं तथा कपड़े से बांध देते हैं।	बीज

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)
4– "गोखरु कॉटी" जोधपुर, बाड़मेर तथा जैसलमेर में बहुतायत में पाया जाता है।	पेड़ालियम म्युरेक्स	सूजाक रोग दूर करने में, शारीरिक दुर्बलता दूर करने में, फल मूत्रवर्धक	● पौधे को पानी में डालकर रख देते हैं। कुछ समय बाद इस पानी को पीया जाता है। ● इसके फल का पाउडर खाने से शारीरिक दुर्बलता दूर होती है यह मूत्रवर्धक भी होते हैं।	बीज
5– "नागरमोथा" जोधपुर, बाड़मेर तथा जैसलमेर में बहुतायत में पाया जाता है	साइप्रस स्केरियोसय	कन्द बालों को धोने के लिये, कन्द से तेल निकालकर साबुन एवं सुगंधित इत्र बनाने के काम में आता है तेल बालों को स्वस्थ रखता है।	● कन्द को रात्रि में पानी में भिगोकर रखते हैं। प्रातः कन्द को मसल कर उस पानी से बालों को धोया जाता है इससे बालों में चमक आती है।	कन्द (राइजोम)
6–"बज्रदन्ती"जैसलमेर, बाड़मेर एवं जोधपुर में पाया जाता है।	बरलेरिया एकेन्धोंइड्स	दन्त रोगों में	● पत्तियों सहित तने को पानी में उबाल कर उस पानी से कुल्ला करने पर दन्त रोग ठीक हो जाते हैं	बीज
7– "भृंगी" / "जल भांगरो" जोधपुर, बाड़मेर एवं जैसलमेर में पाया जाता है।	एकलिप्ता प्रोस्ट्रेटा	पीलिया रोग, यकृत एवं प्लीहा के अधिक बढ़ने पर टौनिक की तरह प्रयोग किया जाता है। पचांग त्वचा रोग में, पत्तियॉ बालों को रंगने में एवं मस्तिष्क को ठण्डा रखने में।	● पीलिया रोग, यकृत एवं प्लीहा के अधिक बढ़ने पर संपूर्ण पौधे का रस शहद या शक्कर के साथ लेने पर रोग समाप्त हो जाता है। ● पौधे का रस त्वचा रोग में लगाते हैं। ● पत्तियों के रस को बालों में लगाने से बाल काले एवं मस्तिष्क को ठंड़क मिलती है।	बीज

१२ मरूस्थल के पशुपालकों का पारम्परिक ज्ञान

जबरदान कविया, सतीश कुमार कौशिश एवं बसन्त कुमार माथुर

राजस्थान के उत्तर – पश्चिमी भाग में फैले रेगिस्तान में खेती के साथ–साथ पशु पालन का भी मुख्य व्यवसाय रहा है। यहाँ भेड़ – बकरी, गाय – भैंस तथा ऊँट आदि की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है जिससे भूमि पर दबाव पड़ने के साथ–साथ चारागाहों का ह्रास हुआ है। पशुपालन में यहाँ की वनस्पति का विशेष योगदान रहा है। पशुओं की विभिन्न बीमारियों के उपचार हेतु रेगिस्तान में पाई जाने वाली वनस्पति का भरपूर उपयोग किया जाता है। स्थानीय वनस्पति के उपयोग से भेड़ – बकरी, गाय – भैंस तथा ऊँट आदि की पेट, श्वांस, आन्तरिक व बाह्य परजीवीयों से निदान तथा प्रजनन सम्बन्धी बीमारियों के उपचार का ज्ञान किसान को पीढ़ी दर पीढ़ी मिलता आया है।

राजस्थान के उत्तर–पश्चिमी भाग के 12 जिलों में थार रेगिस्तान फैला हुआ है। पशुपालन आधारित कृषि यहाँ रहने वालों का मुख्य व्यवसाय रहा है। वर्षा की अनिश्चितता व अपर्याप्ता के कारण यहाँ के निवासियों को पशुपालन से जीविका चलाने में बहुत सहारा मिलता है। पशुपालन की तुलना में कृषि उत्पादन प्रकृति पर बहुत अधिक निर्भर होने से अधिक प्रभावित होता है। पशु जनसंख्या के आधार पर देश में उत्तर प्रदेश के बाद राजस्थान का दूसरा स्थान आता है। 1956 से 1997 के मध्य पशु संख्या 324.2 लाख से 543.8 लाख पहुँच गई जो कि 67.7 प्रतिशत सार्थक वृद्धि है। राजस्थान राज्य में गाय, भेड़ एवं ऊँटों की संख्या सर्वाधिक है। 1997 की पशु गणना के आधार पर 122.0 लाख गायें, 31.5 लाख भैंसें, 142.0 लाख भेडें, 169.0 लाख बकरीयाँ एवं 6.7 लाख ऊँट हैं। शुष्क (पश्चिमी) राजस्थान में पूरे राज्य की अपेक्षा पिछले 4 दशकों (1956 – 97) में गायों एवं बकरीयों की संख्या में सार्थक सुधार हुआ है। शुष्क राजस्थान व सम्पूर्ण राजस्थान में पशु जनसंख्या में 173 प्रतिशत एवं 94 प्रतिशत की वृद्धि हुई, जबकि शुष्क राजस्थान में गायों की संख्या में बहुत कम वृद्धि देखी गई और राजस्थान में तो यह ना के बराबर है।

राजस्थान में 1956 में पशु जनसंख्या 134.0 लाख थी जो 1997 में 286.0 लाख हो गई। 1956 से 1997 तक भैसों, भेड़ों, बकरीयों तथा ऊँटों की संख्या में 188.2, 93.2, 94.2 व 93.3 प्रतिशत की वृद्धि हुई। राजस्थान के छः जिलों में लगातार सूखे के कारण गाय, भेड़ों व ऊँटों की जनसंख्या में 1966 की जनसंख्या की अपेक्षा 1972 तक 2.6, 7.0 तथा 13.0 प्रतिशत तक की कमी आई। जबकि बकरीयों तथा

भैंसों की संख्या 37.0 तथा 5.0 प्रतिशत तक बढ़ी। शुष्क राजस्थान में 1956 से 1997 के दौरान गाय, भैंस, भेड़, बकरी एवं ऊँटों की जनसंख्या 18.8, 337.0, 172.8 एवं 47.8 प्रतिशत बढ़ी। शुष्क राजस्थान में ही 1966 – 72 के दौरान सूखे के कारण गाय, भेड. व बकरी की जनसंख्या 34.7, 7.4 एवं 36.6 प्रतिशत गिरी। वहीं पर भैंसों तथा ऊँटों की जनसंख्या में 4.9 एवं 11.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

मरू क्षेत्र की वनस्पति वृक्ष, झाड़ियाँ, लताऐं तथा घास पशुपालकों के लिये वरदान रही है। यहाँ की वनस्पति का उपयोग पशुपालक पशुओं को पेट भर खिलाने के साथ उनका अधिकतम उपयोग विभिन्न बीमारियों के उपचार हेतु औषधीयों के रूप में सेवन करना भी रहता आया है क्योंकि स्थानीय वनस्पति सरलता से सुलभ रहती है तथा उपचार के लिये जानकार व्यक्ति गाँवों में ही मिल जाते हैं इसलिये इनका महत्व और भी बढ़ जाता है।

मरू क्षेत्र में अकाल की परिस्थितियों में खान – पान में कमी के साथ – साथ बाह्य एवं आंतरिक परजीवी भी कष्ट दायक होते हैं। इनके कारण पशुओं का स्वास्थ्य पूर्ण रूप से ठीक नहीं रहता जिसके कारण गाय/भैंस का गर्मी में न आना, दो ब्यातों में अन्तर बढ़ जाना, खाज – खुजली तथा कमजोरी प्रमुख हैं। पशुपालन संबन्धी ज्ञान कलमबद्ध कर वैज्ञानिक दृष्टि से परखने की शुरूआत की गई है। पशु पालकों को पारम्परिक ज्ञान पीढ़ी दर पीढ़ी अनुभवों के आधार पर मिलता आया है जो वैज्ञानिक दृष्टि से बहुत लाभकारी पाया गया है। पशुपालकों का पशुपालन व्यवस्था से जुड़ी हुई विभिन्न बातें जिनमें पशुओं की विभिन्न बीमारियों के उपचार तथा गाय – भैंस से अधिक दूध के लिये विभिन्न उपायों आदि हैं पशुपालक इन सभी उपायों का उपयोग कर लाभ उठा सकते हैं।

1 – गायों व भैंसों की बीमारियाँ व उपचार

1.1 **आफरा :** आफरा होने पर जानवर जमीन पर पड़ा तड़फता है। पेट में वायु भरने से ढ़ोल की तरह की आवाज करता है। पशु पांव पछाड़ता है तथा श्वांस लेने में दिक्कत होती है इसके लिये निम्न उपचार करें :

1.1.1	**सामग्री**	(i) हल्दी	:	100 ग्राम
		(ii) तेल	:	100 ग्राम
		(iii) दूध	:	आधा किलोग्राम

विधि : दूध हल्का सा गर्म करें तथा हल्दी व तेल मिलाकर पशु को नाल द्वारा देवें।

1.1.2	**सामग्री**	(i) अजवाइन	:	250 ग्राम
		(ii) देशी घी	:	100 ग्राम
		(iii) दूध	:	आधा किलोग्राम

विधि : अजवाइन को घी में घोलकर उसे गुनगुना कर पशु को नाले से देवें।

1.1.3	**सामग्री**	(i) छोटी काचरी	:	250 ग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : काचरी को बारीक पीस लें तथा पानी में उबालकर जानवर को पिला देवें।

1.1.4	**सामग्री**	(i) देशी चंदलाई के बीज	:	250 ग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : वर्षा ऋतु में देशी चंदलाई के बीज इकट्ठे कर सुखा लें और आवश्यकता पड़ने पर ठंड़े जल में मिलाकर पशु को पिलावें।

1.1.5	**सामग्री**	(i) मीठा तेल	:	500 ग्राम

विधि : तेल को जल में मिलाकर फेंट लें तथा पशु को पिला देवें।

1.2 **दस्त (पेट छूटना) :** वर्षा ऋतु में बछड़ों को पतली दस्तें लग जायें तो निम्न उपचार करें :

1.2.1 दो दिन तक पूंछ को उसके जोड़ से थोड़ा नीचे कपड़े से चारों ओर बांध कर रखे, इससे लाभ होता है।

1.2.2	**सामग्री**	(i) छोटी काचरी (सूखी हुई)	:	250 ग्राम
		(ii) मट्ठा/छाछ	:	250 मि.ली.

विधि : छोटी काचरी को कूटकर बारीक कर लें और उसको छाछ के साथ मिलाकर पिला दें।

1.2.1	**सामग्री**	(i) चामकस	:	250 से 500 ग्राम
		(ii) दूध	:	आवश्यकतानुसार

विधि : चामकस वर्षा ऋतु में तालाबों के जलग्रहण क्षेत्रों में अधिक होती है। उसे छाया में सुखाकर रख लें तथा आवश्यकता पड़ने पर दूध के साथ 5 दिन तक देवें।

1.3 **कब्ज होना :** कब्ज होने से पेट सख्त होने लगता है तथा पशु गोबर नहीं करता। गाय व भैंस को कब्ज हो जाय तो निम्न उपचार करें :

1.3.1	**सामग्री**	(i) छोटी काचरी (सूखी हुई)	:	500 ग्राम
		(ii) देशी शक्कर	:	500 ग्राम
		(iii) नमक	:	200 ग्राम
		(iv) गुड़	:	150 ग्राम
		(v) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : उपरोक्त सामग्री जल में घोल कर गर्म कर लें तथा ठंडा कर पशु को पिला दें। भेड़ बकरियों को इसका पांचवा हिस्सा ही खुराक पिलावें।

1.3.2	**सामग्री**	(i) तिल का तेल	:	250 से 500 ग्राम
		(ii) गुड़	:	250 से 500 ग्राम
		(iii) मेथी	:	250 ग्राम
		(iv) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : गुड़ को जल में उबाल कर उसमें मेथी तथा तिल का तेल मिलाकर ठंडा कर, पशु को नाल से पिला दें।

1.3.3	**सामग्री**	(i) फिटकरी	:	30 ग्राम
		(ii) गुड़	:	250 ग्राम
		(iii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : उपरोक्त सामग्री को घोलकर पशु को पिला दें। ऊँट को 250 ग्राम फिटकरी व 250 ग्राम गुड़ दें।

1.3.4	**सामग्री**	(i) मीठा तेल	:	50 ग्राम
		(ii) देशी शक्कर	:	500 ग्राम

विधि : दोनों को मिलाकर पशु को नाल से पिला दें।

1.4 **पेट में कीड़े :** पशु के पेट में कीड़े पड़ने पर गोबर में लटें दिखाई देती हैं तथा साथ ही पशु गुदा बार–बार खोलता व बंद करता है व पूंछ उठाकर चलता हो तो यह उपचार करें :

1.4.1	**सामग्री**	(i) गुड़	:	आधा से एक किग्रा
		(ii) लाल मिर्च पिसी हुई	:	100 ग्राम

विधि : पहले गुड़ दिन में दो बार दो दिन तक पशु को खिला दें। बाद में लाल मिर्च के पाउडर को घोल कर पिलावें।

1.5 **बाय (बादी) का होना :** बाय (बादी) की बीमारी होने पर चलने – फिरने में तकलीफ होती है। इसके लिये निम्न उपचार करना चाहिये :

1.5.1	**सामग्री**	(i) सतावर की जड़	:	250 ग्राम
		(ii) गूगल की हरी टहनी	:	20 ग्राम
		(iii) गुड़	:	50 ग्राम
		(iv) जल	:	पर्याप्त मात्रा में

विधि : सतावर व गूगल को जल में उबालकर उसमें गुड़ मिला कर व ठंडा कर पशु को पिला देवें।

1.5.2	**सामग्री**	(i) हींग	:	5 ग्राम

चित्र 12.1 : चामकस (कोरकोरस)

चित्र 12.2 : जानवरों की बिमारियों में काम आने वाले खाद्य पदार्थ
[6–अजवाइन, 7–मेथी, 8–साजी, 9–हींग, 10 गुड़ लाठिया, 11–फिटकरी, 12–गुड़, 13–देशी शक्कर तथा 14–छोटी काचरी]

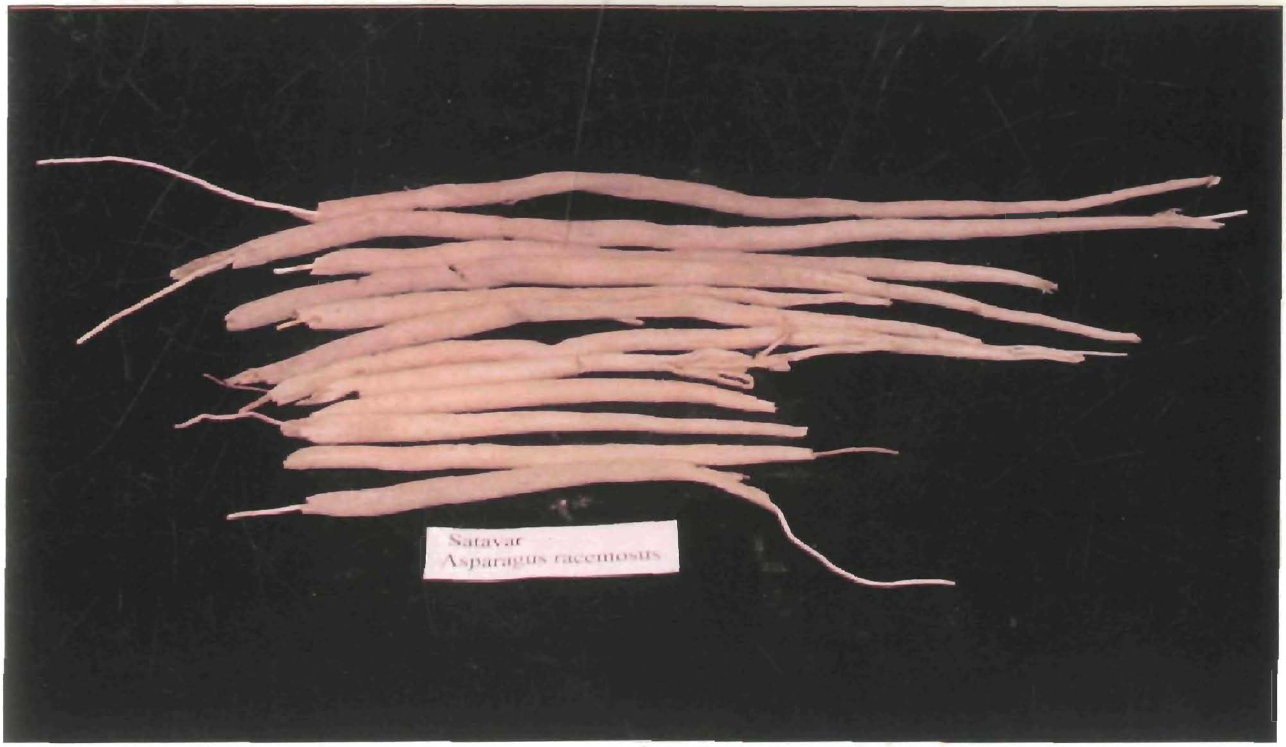

चित्र 12.3 : नाहर काँटा/सतावर (एसपैरागस रेसीमोसस)

चित्र 12.4 : गूगल (केमीफोरा वाईटाई)

(ii) घी : 250 ग्राम

(iii) गुड़ : 100 ग्राम

विधि : आहार के साथ खिलावें।

1.5.3 **सामग्री** (i) ऊँट के सिर की हड्डियों का चूर्ण

विधि : मरे हुए ऊँट के सिर की हड्डी को जलाकर राख बना लें और 15 दिन तक खिलायें।

1.5.4 **सामग्री** (i) ऊँट के सिर की हड्डियाँ

(ii) हल्दी

विधि : मरे हुऐ ऊँट के सिर की हड्डियाँ लें और नाक के छेद में हल्दी भर कर जलाकर उसको पीस कर चूर्ण बना कर 15 दिन तक देवें।

1.6 **दमा (दाउजला)** : गाय/बैल दम फूलने से हाँफने लगता है और ज्यादा चल नहीं सकता तथा बार – बार बैठना पसंद करता है व चरता नहीं है। दम (साँस) फूलता हो तो यह उपचार करें :

1.6.1 **सामग्री**

(i) देशी शक्कर	:	4 किलोग्राम
(ii) देशी घी	:	4 किलोग्राम
(iii) गेहूँ	:	4 किलोग्राम

विधि: गेहूँ को जल में 24 घण्टे भिगोकर रखें। अगले दिन गेहूँ को हाथ से मसलकर छिलका उतार देवें। छाया में सुखाकर बाद में उपरोक्त सामग्री मिलाकर एक किलोग्राम प्रति दिन के हिसाब से खिलावें।

1.7 **सर्दी का असर होना :** रोगग्रस्त गाय को खांसी होती है तथा नाक से सफेद पानी गिरता है। इसके लिये निम्न उपचार करें :

1.7.1 **सामग्री**

(i) अजवाइन	:	50 ग्राम
(ii) साजी	:	2 ग्राम
(iii) धनिया	:	25 ग्राम
(iv) मेथी	:	25 ग्राम
(v) जल	:	आधा लीटर

विधि : जल में मेथी, धनिया व अजवाइन मिलाकर उबालें। साजी डालकर ठंडा कर लें। दिन में, सुबह व शाम को पिलावें।

प्रजनन अंगों की बीमारियों के उपचार :

1.8 **जेर न गिरना :** ब्यांत के पश्चात् पूरी तरह से जेर नहीं गिरती है। देर होने से मवाद भी आने लगती है। निम्न उपचार करें :

1.8.1	**सामग्री**	(i) राशि गुड़ (लाठिया)	:	250 ग्राम
		(ii) सिणिया की जड़	:	100 ग्राम
		(iii) बांस की खपच्ची/टुकड़े	:	100 ग्राम पिसी हुई बारीक
		(iv) जल	:	पर्याप्त मात्रा

विधि : इस सामग्री को एक साथ जल में मिलाकर उबालकर ठंडा कर लें। छानकर पशु को पिला दें। कई पशु पालक केवल बांस की खपच्ची को उबाल लेते हैं तथा ठंडा कर पशु को पिलाते हैं।

1.8.2	**सामग्री**	(i) अजवाइन	:	1 किलोग्राम
		(ii) जल	:	2 लीटर

विधि : अजवाइन की आधी मात्रा जल में मिलाकर गर्म कर तथा आधी ऊपर से मिलाकर 2 – 3 बार में पशु को नाल से पिला दें।

1.8.3	**सामग्री**	(i) चावल	:	500 ग्राम
		(ii) लौंग	:	6
		(iii) जल	:	पर्याप्त मात्रा

विधि : चावल की खिचड़ी बनालें। लौंग पीसकर खिचड़ी में मिलाकर दो दिन तक पशु को खिलावें।

1.8.4	**सामग्री**	(i) हरा खींप	:	250 से 500 ग्राम
		(ii) गुड़	:	250 ग्राम
		(iii) जल	:	प्रर्याप्त मात्रा में

विधि : खींप को जल में उबालकर उसमें गुड़ मिला लें। छानकर पशु को पिलावें।

1.8.5	**सामग्री**	(i) गेहूँ की गूगरी	:	2 किलोग्राम
		(ii) देशी घी	:	100 ग्राम
		(iii) गुड़	:	500 ग्राम
		(iv) जल	:	पर्याप्त मात्रा

विधिः गेहूँ को उबालकर गूगरी बना लेवें तथा उसमें घी व गुड़ मिलाकर पशु को खिलावें।

1.8.6 **सामग्री** (i) बांस : 250 ग्राम

(ii) गुड़ : 250 ग्राम

(iii) जल : पर्याप्त मात्रा

विधि : बांस को बारीक कर पानी में उबाल दें। उबालते समय गुड़ डाल दें। इसे ठंडा कर पशु को दो दिन तक पिलावें।

1.8.7 **सामग्री** (i) फिटकरी : 100 ग्राम

(ii) गुड़ : 250 ग्राम

(iii) जल : पाव लीटर

विधि : गुड़ व जल की मात्रा बराबर – बराबर लेकर बोतल में भरकर जमीन में गाड़ दें। एक महीने बाद बाहर निकाल लें। पशु को आवश्यकता पड़ने पर देते समय उसमें फिटकरी मिलाकर देवें।

1.8.8 **सामग्री** (i) अर्जन (ऊर्जिया) : 10 ग्राम

(ii) जल : पर्याप्त मात्रा

विधि : छांल को जल के साथ पीतल के बर्तन में उबाल लें तथा ठंड़ा कर छान लें। दिन में दो बार पिलावें।

		मात्रा	
1.8.9	**सामग्री**	ऊँट / भेड़	गाय / भैंस
	(i) हिंगोटा	4 1/2	2
	(ii) जल	आधा लीटर	पर्याप्त मात्रा में

विधि : हिंगोटा में ड़ायजेनिन का तेल एक सक्रिय तत्व होता है, जो कि मांस पेशियों में सिकुड़न पैदा कर जेर गिराने में सहायक होता है। हिंगोटा से पेट साफ होता है तथा पेट व आँतों के हानिकारक कीड़े मर जाते हैं।

1.9 मुराड़ा व खुराड़ा :

(अ) **मुराड़ा** : मुंह के आस पास छोटी – छोटी फुंसियां हो जाने पर निम्न उपचार करें :

1.9.1 **सामग्री** (i) हल्दी

(ii) मीठा तेल

विधि : तेल में हल्दी ड़ालकर थोड़ा गर्म करें तथा इसे मुराड़ा वाले भाग पर लगावें।

1.9.2 **सामग्री** (i) नमक : 250 ग्राम
(ii) मीठा तेल : 1 किलोग्राम

विधि : तेल में नमक मिलाकर थोड़ा गर्म कर लें तथा मुंह पर जहाँ मुराड़ा हो वहाँ लगावें।

(ब) **खुराड़ा** : यह पशुओं के खुरों पर होता है। इसमें खुरों के ऊपरी हिस्से पर फुंसियां हो जाती हैं। निम्न उपचार करें :

1.9.1 **सामग्री** (i) बारीक पिसी हुई तम्बाकू : 1 किलोग्राम

विधि : खुराड़ा के घाव पकने पर उसमें कीड़े पड़ जाते हैं अतः पशु के पांव को पहले गर्म पानी से धोकर साफ करें। उस जगह घावों पर तम्बाकू का पाउडर बुरकें। यह उपचार 3 दिन तक करें।

1.9.2 **सामग्री** (i) कपूर की गोलियों का पाउडर

विधि : खुराड़ा निवारण के लिये पशु के पावं पर जहाँ घाव हो उसे गर्म पानी से धोकर उस पर कपूर की गोलियों का पाउडर बुरक दें। यह उपचार 3 दिन तक दोहरायें।

1.9.3 **सामग्री** (i) कैर की कलियों का पाउडर

विधि : कैर की छोटी कलियों का पाउडर खुराड़ा होने पर जल में मिलाकर लगावें।

1.10 पशुओं का चींचड़ों, मक्खियों आदि (बाह्य कीड़ों) से निदान पाने का उपचार :

1.10.1 **सामग्री** (i) धमासा

विधि : धमासा पौधों को उखाड़कर आग में जला कर धुआं करें। मच्छर व मक्खियाँ भाग जायेगें।

1.10.2 **सामग्री** (i) तुम्बे के बीज : 500 ग्राम
(ii) तारामिरा का तेल : 1 किलोग्राम

विधि : तुम्बे के बीजों को तेल में ड़ालकर जलने तक गर्म करें। बाद में तेल को छान कर पशु के शरीर पर 2 – 3 दिन तक लगाने से चीचड़ें मर जाते हैं।

1.10.3 **सामग्री** (i) हरी – बुई
(ii) हरे कैर की टहनियाँ
(iii) तुम्बे की हरी बेल

विधि : वर्षा ऋतु में पशुओं को रखने की जगह के आस – पास आग जलाते हैं। आग में पहले कचरा व उस पर बुई, हरे कैर की टहनियाँ तथा तुम्बे की हरी बेल ड़ाल देते हैं। इस धुऐं

से पशुओं के शरीर पर खार जम जायेगा जिससे 2 – 3 दिन तक मच्छर व मक्खियाँ नहीं सताऐंगी।

1.11 गाय एवं भैंस का दूध बढ़ाना :

1.11.1 **सामग्री**

(i)	बाजरा	:	50 किलोग्राम
(ii)	गुड़	:	30 किलोग्राम
(iii)	तिल का तेल	:	15 किलोग्राम
(iv)	अजवाइन	:	4 किलोग्राम
(v)	पीपरा	:	50 ग्राम

विधि : बाजरे को पीस कर गर्म जल में उबालकर दलिया बनाकर उसमें गुड़ मिला दें। तीन से साढे तीन किलो बाजरा 15 दिन तक दें। इसके अतिरिक्त आधा किलोग्राम अजवाइन 8 दिन में और 50 ग्राम पीपरा 5 दिन में खिला दें।

1.11.2 **सामग्री**

(i)	मेथी	:	500 ग्राम
(ii)	गुड़	:	1 किलोग्राम
(iii)	बाजरे का दलिया	:	2 किलोग्राम
(iv)	तेल	:	250 ग्राम

विधि : बाजरे को जल के साथ गर्म कर दलिया बना लें तथा उपरोक्त सामग्री मिलाकर 15 दिन तक खिलावें।

1.11.3 **सामग्री**

(i)	बाजरा	:	2 किलोग्राम
(ii)	गुड़	:	आधा किलोग्राम
(iii)	हल्दी	:	25 ग्राम
(iv)	जल	:	पर्याप्त मात्रा में

विधि : बाजरे को उबाल लें। फिर उसमें गुड़ और हल्दी मिलाकर उपरोक्त मात्रा 10 दिन तक दुधारू पशु को सुबह व शाम खिलावें।

1.11.4 **सामग्री** (i) देशी बबूल की सूखी फलियॉ

विधि : देशी बबूल की हरी फलियों को तोड़कर छाया में सुखा लें तथा बाद में दुधारू जानवर को एक किलोग्राम प्रतिदिन बाटे (पशुआहार) के साथ 25 – 30 दिन तक खिलावें इससे अधिक दिन तक भी खिलाया जा सकता है।

2 – भेड़ों व बकरीयों की बीमारियाँ व उपचार :

2.1 **आफरा** : इस बीमारी में बांई तरफ का पेट फूल जाता है तथा सांस लेने में तकलीफ होने लगती है। पशु ज़मीन पर गिर जाता है और पैर पछाडता है।

2.1.1 **सामग्री** (i) बकरी का दूध : 250 से 500 ग्राम
(ii) आक का दूध : 10 बूंदे

विधि : दोनों को मिलाकर पिला दें।

2.2 **पेट दुखना** : जब बकरी के पेट में दर्द होता है तो वह तड़फती है, पीछे के पांव पटकती है और मीगंणी सूख जाती है इस दशा में निम्न उपचार करें :

2.2.1 **सामग्री** (i) चाय की पत्ती : 100 ग्राम
(ii) छाछ : आवश्यकतानुसार

विधि : चाय की उबली हुई पत्ती को छाछ में घोलकर नाल से पिलावें।

2.3 **दस्त (तड़ा छींटना) लगना :**

2.3.1 **सामग्री** (i) फिटकरी : 50 ग्राम
(ii) कपड़े की पट्टी या लीरी : आवश्यकतानुसार

विधि : फिटकरी बारीक पीस कर 50 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से तीन दिन तक देवें। कपड़े की लीरी से पूंछ के जोड़ से थोड़ी नीचे बांध देवें।

2.4 **कब्जी** : इसमें मीगंणी सख्त हो जाती हैं और बहुत थोड़ी – थोड़ी बाहर निकलती हैं। निम्न उपचार करना चाहिए :

2.4.1 **सामग्री** (i) गुड : 150 ग्राम
(ii) जल : पर्याप्त मात्रा में

विधि : गुड़ को गर्म जल में घोल कर उसे ठंडा कर पिलावें।

2.5 **पेशाब में खून आना** : कई बार पशु के पेशाब में खून आने लग जाता है और वह कमजोर होने लगता है। निम्न उपचार करें :

सामग्री (i) मेहन्दी : 100 ग्राम

विधि : मेहन्दी को पानी में घोलकर पिलावें।

2.6 **निमोनिया (सेफड़ा)** : भेड़ एवं बकरी को ठंड़ लगने से निमोनिया होने पर नाक बहने लगती है तथा सांस मुश्किल से आती है इस दशा में निम्न उपचार करें :

2.6.1	**सामग्री**	(i) फिटकरी	:	2 किलोग्राम
		(ii) साजी	:	500 ग्राम
		(iii) गुड़	:	2 किलोग्राम
		(iv) बेर की जड़	:	2 किलोग्राम
		(v) जल	:	पर्याप्त मात्रा में

विधि : उपरोक्त सामग्री को मिट्टी के मटके में भरकर उसे बंद कर दें। इस मटके को खाद के ढ़ेर में सात दिन तक दबा कर रखें। भेड़ व बकरी को यह मिश्रण 250 मि. ली. की दर से दिन में दो बार पिलावें।

2.6.2	**सामग्री**	(i) फिटकरी	:	25 ग्राम

विधि : फिटकरी गर्म कर उसको फूला लें। बारीक पीसकर इसे दिन में दो बार, चार दिन तक पिलावें।

2.6.3	**सामग्री**	(i) चाय की पत्ती	:	दो चम्मच
		(ii) जल	:	पर्याप्त मात्रा में

विधि : चाय की पत्ती को पानी में उबालकर ठंडा करके जानवर को पिलावें।

2.7 पीलिया : इस बीमारी के होने पर भेड़ व बकरी की ऑखे पीली पड़ जाती हैं। पेशाब का रंग गहरा पीला हो जाता है और कभी – कभी खून भी आने लग जाता है। निम्न उपचार करने पर आराम होता है :

2.7.1	**सामग्री**	(i) देशी बबूल के फूल	:	100 ग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : फूलों को कूटकर छान लें और पानी में घोलकर 3 – 4 दिन तक पिलावें।

2.7.2	**सामग्री**	(i) हरे बैंगन का रस

विधि : हरे बैंगन का रस निकालकर उसे दो दिन तक एक कप सुबह व एक कप शाम को पिलावें।

3 – ऊँटों की बीमारियाँ व उपचार :

3.1 **पतली दस्त** : ऊँट को कभी – कभी पतली दस्तें लग जाती हैं। ऐसे में ऊँट बेचैन होकर छटपटाता है तथा पेट के बल लेटता है निम्न उपचार करें :

3.1.1	**सामग्री**	(i) धमासा	:	4 पौधे
		(ii) जल	:	4 लीटर

विधि : धमासे के पौधे को बारीक करके जल में उबाल कर ठंड़ा कर लें तथा दो दिन तक पिलावें।

3.1.2	**सामग्री**	(i) चामकस	:	4 पौधे
		(ii) गधे की लीद	:	1 किलोग्राम
		(iii) बाजरे का आटा	:	200 ग्राम
		(iv) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : शाम को चामकस व गधे की लीद को अलग – अलग मिट्टी के बर्तनों में भिगोलें। दूसरे दिन सुबह छान कर दोनों को मिला दें तत्पश्चात् इसमें बाजरे का आटा मिलाकर तीन दिन तक पिलावें। यदि उपरोक्त सामग्री न मिले तो केवल हरी चामकस को घोटकर पिला दें।

3.1.3	**सामग्री**	(i) अजवाइन	:	250 ग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : इसे दिन में दो बार जल में मिलाकर पिलावें।

3.1.4	**सामग्री**	(i) अजवाइन	:	250 ग्राम
		(ii) सरसों का तेल	:	500 ग्राम

विधि : अजवाइन कूटकर सरसों के तेल में मिलाकर ऊँट को सुबह व शाम तीन दिन तक पिलावें।

3.1.5	**सामग्री**	(i) मुल्तानी मिट्टी	:	1 किलोग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : जल में घोलकर नाल से देवें।

3.1.6	**सामग्री**	(i) तम्बाकू (जर्दा)	:	150 ग्राम
		(ii) नीला थोथा	:	50 ग्राम

विधि : जर्दा तथा नीला थोथा पानी में घोलकर सुबह पिलावें तथा दोपहर तक चारा व पानी न देवें।

3.1.7	**सामग्री**	(i) लाल मिर्च पिसी हुई	:	500 ग्राम
		(ii) गुड़	:	500 ग्राम

विधि : प्रातः सूर्योदय से पहले ऊँट को गुड़ खिला दें। लगभग 3 घंटे पश्चात् पिसी मिर्च घोलकर पिलावें। ऊँट को चारा व पानी आदि इसके 3 – 4 घंटे के पश्चात् ही देवें।

3.2 **कोठे की बीमारी :** यह बीमारी ऊँट पर अधिक बोझा ढ़ोने या सवारी करते समय दायें या बायें पसवाड़े में छड़ी के मारने से या ऊँट के रेत में लोट – पोट होते समय पसवाड़े में कंकड़, पत्थर आदि गहरा चुभने से हो जाती है। मींगणे सूखे निकलते हैं और उन पर धारियाँ बनती हैं।

विधि : लोहे की सलाख को गर्म करके पूंछ के जोड़ से थोड़ा नीचे पूंछ की नसों पर चारों ओर घेरा (कूंड़ा) बना देते हैं।

3.3 पेशाब की तकलीफ :

यदि ऊँट बहुत कम मात्रा में व बार – बार पेशाब करता है तो यह उपचार करें :

3.3.1	**सामग्री**	(i) गधे की लीद	:	1 किलोग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार
		(iii) मिट्टी का बर्तन		

विधि : शाम को मिट्टी के बर्तन में गधे की लीद जल में भिगों दें तथा प्रातः छान कर ऊँट को पिला दें।

3.3.2	**सामग्री**	(i) मेहन्दी	:	500 ग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार
		(iii) मिट्टी का नया बर्तन		

विधि : मेहन्दी को रात में मिट्टी के नये (कोरे) बर्तन में भिगों दें तथा सुबह छानकर ऊँट को पिला दें।

3.3.3	**सामग्री**	(i) बेरी की जड़	:	1 किलोग्राम
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : बेरी की हरी जड़ को बारीक कूटकर पीसलें तथा जल में मिलाकर व छानकर ऊँट को पिला दें।

3.3.4	**सामग्री**	(i) देशी शक्कर (बरेली वाली)	:	500 ग्राम
		(ii) जल	:	100 ग्राम

विधि : देशी शक्कर को जल में मिला कर ऊँट को पिलावें। भेड़ व बकरी के लिए शक्कर की मात्रा चौथाई ही उपयोग में लें।

3.3.5	**सामग्री**	(i) सिणिया की जड़	:	7
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : हरे सिणिया के सात पौधों की जड़े कूटकर निचोड़ लें। उसमें ठंडा जल मिलाकर पिला दें।

3.4 खुजली होना :

3.4.1	**सामग्री**	(i) तारामिरा का तेल	:	500 ग्राम

	(ii) गंधक	:	125 ग्राम

विधि : तेल हल्का गर्म कर उसमें गंधक मिला देवें। थोडा ठंडा करके ऊँट के शरीर पर लेप कर दें। शरीर पर खुजली के फैलाव को देखते हुए यह मात्रा इसी अनुपात में बढ़ा लें।

3.4.2	**सामग्री**	(i) फिटकरी	:	500 ग्राम
		(ii) तारामिरा(दला हुआ)	:	5 किलोग्राम
		(iii) गुड़	:	10 किलोग्राम
		(iv) जल	:	पर्याप्त मात्रा
		(v) मिट्टी का बर्तन		

विधि : उपरोक्त सामग्री को मिलाकर मिट्टी के बर्तन में भरकर तीन दिन तक रखें। बाद में प्रतिदिन एक लीटर के हिसाब से ऊँट को पिलाते रहने से आराम होता है।

3.4.3	**सामग्री**	(i) लहसुन	:	1 किलोग्राम

विधि : 125 ग्राम लहसुन की कुलियाँ प्रतिदिन के हिसाब से कूटकर 8 दिन तक देवें।

3.4.4	**सामग्री**	(i) पुरानी जाल की लकड़ी	:	5 किलोग्राम की राख
		(ii) खारा चूना	:	500 ग्राम
		(iii) जल	:	पर्याप्त मात्रा में
		(iv) बर्तन	:	मटका

विधि : मटके में जल व पूरी सामग्री को भर कर रात भर अंगारों पर रख दें। सामग्री पक जाना निश्चित करने के लिए उसमें ऊँट का बाल ड़ाल कर देखें। यदि बाल गल जाये तो इसे पका हुआ जान लें। 2 – 3 दिन तक ऊँट के शरीर पर चौपड़ दें तथा तीन दिन बाद शरीर को धो ड़ालें।

3.4.5	**सामग्री**	(i) लोकी मूले का रस	:	पर्याप्त मात्रा में
		(ii) जल	:	आवश्यकतानुसार

विधि : हरे लोकी मूलों को उखाड़ लेवें। टुकड़े करके उसमें से रस निकाल लेवें। रस में थोड़ा जल मिलाकर शरीर पर चौपड़ दें।

3.4.6	**सामग्री**	(i) तुम्बे के बीज का अर्क
		(ii) मिट्टी का टोंटीदार बर्तन

विधि : तुम्बों के बीज को तेल से चौपड़ कर टोंटीदार मिट्टी के बर्तन में भर कर मुंह बंद कर उसे पेदें पर उल्टी रखें। जमीन में भट्टी बना कर उसको रात भर धीमी आंच पर रखते हैं। बर्तन

की टोंटी से जब अर्क बाहर आने लगे तो उसे किसी बर्तन में इकट्ठा करलें। ऊँट को खुजली होने से चमड़ी सख्त होकर फटने लगती है तथा चिपक जाती है। उस पर यह अर्क लगाने से ठीक हो जाती है।

3.4.7 **सामग्री** (i) हरे रोहिड़े के तने के टुकड़े : 5 किलोग्राम
(ii) मिट्टी का बर्तन

विधि : हरे रोहिड़े के तने के छोटे – छोटे टुकड़े कर मिट्टी के बर्तन में भर दें। छेद किये हुए ढक्कन से मुँह बंद कर लेवें। जमीन में कम गहरा तथा छोटा गड्ढा खोद कर भट्टी बना लें। भट्टी पर बर्तन को ढ़क्कन सहित उल्टा रखकर नीचे दूसरा मिट्टी का बर्तन रखें। उल्टा रखे हुए बर्तन के पेंदे पर रात भर उपलों आदि से आग जलाकर धीमी आँच रखें। नीचे रखे बर्तन में अर्क इकट्ठा हो जायेगा। जिसे तीन वर्ष तक रख सकते हैं।

3.5 जइया : पांव तले में फट जाये व खून गिरता हो तो यह उपचार करें :

3.5.1 **सामग्री** (i) मरे पशु की चर्बी

विधि : मरे हुए पशु की चर्बी लगावें।

3.6 **जांदा (घुटने में अकड़ आना)** : ऊँट के अगले पांव अकड़ जाते हैं। ठीक तरह से चल नहीं सकता है तथा पावों के बीच सूजन आ जाती है जिसे बाय आना कहते हैं।

3.6.1 **सामग्री** (i) ग्रामणा घास

विधि : ग्रामणा की जड़ लेवें। बारीक कर पानी में उबाल लें तथा बाद में घुटने पर बांध दें।

3.6.2 **सामग्री** (i) मीठा तेल : 50 ग्राम
(ii) आक का दूध : 10 बूंदे

विधि : ऊँट की पूंछ के आखिरी सिरे पर चीरा लगाकर उसे तेल व आक के घोल (मिश्रण) में डुबा दें।

3.7 **रस भागना (ऊँट का लंगड़ाना)** :

3.7.1 **सामग्री** (i) फिटकरी : 150 ग्राम
(ii) साजी : 150 ग्राम

विधि : फिटकरी व साजी को अलग – अलग बर्तनों में उबालें। दोनों को मिलाकर ऊँट को नाल से पिलावें।

3.8 **पांवों में बाय आना** : इस बीमारी में ऊँट अकड़ कर चलता है तथा चलते समय पसीना

– पसीना हो जाता है और चारा भी कम चरता है।

3.8.1 **सामग्री** (i) भैंस के सिर की हड्डियों को पीस कर बारीक चूरा कर लें।

विधि : इस हड्डियों के चूरे को चार दिन तक देवें तो वह ठीक हो जाएगा।

3.8.2 **सामग्री** (i) भेड़ का मूत्र : 3 लीटर

विधि : प्रतिदिन एक लीटर की दर से तीन दिन तक पिलावें।

3.8.3 **सामग्री** (i) गूगल : 1 किलोग्राम

विधि : 250 ग्राम प्रतिदिन के हिसाब से चार दिन तक पानी में घोल कर देवें।

3.9 **जहर बाय** : जहर बाय होने पर निम्न उपचार करें :

3.9.1 **सामग्री** (i) कालीपाड़ पेड की लकड़ी

विधि : कालीपाड़ की लकड़ी को घिस कर पिलावें।

3.9.2 **सामग्री** (i) नाहर काँटा (सतावर) की जड़ : 2 किलो ग्राम

विधि : नाहर काँटा (सतावर) की जड़ को बारीक पीसकर चार दिन तक पिलावें।

3.10 **खांसी होना :**

3.10.1 **सामग्री** (i) फिटकरी : 100 ग्राम
(ii) गोमूत्र (आवश्यकतानुसार) : 500 ग्राम

विधि : प्रतिदिन 100 ग्राम फिटकरी गोमूत्र के साथ मिलाकर पाँच दिन तक देवें।

3.11 **कमजोरी आना** : कमजोरी से छुटकारा पाने के लिये निम्न उपचार करें :

3.11.1 **सामग्री**

(i) पीपरामूल	:	200 ग्राम
(ii) सोंठ	:	400 ग्राम
(iii) हल्दी	:	200 ग्राम
(iv) मोंठ का आटा	:	1 किलोग्राम
(v) गुड़	:	500 ग्राम
(vi) तिल का तेल	:	250 ग्राम

विधि : मोंठ के आटे में गुड़ ड़ालकर गर्म करें, ठंडा होने पर इसमें तेल, पीपरामूल व हल्दी आदि मिलाकर 8 लड्डु बना लें। पशु को एक लड्डु रोज खिलायें।

3.11.2 **सामग्री** (i) शंखपुष्पी (सिणधर) : 5 किलोग्राम

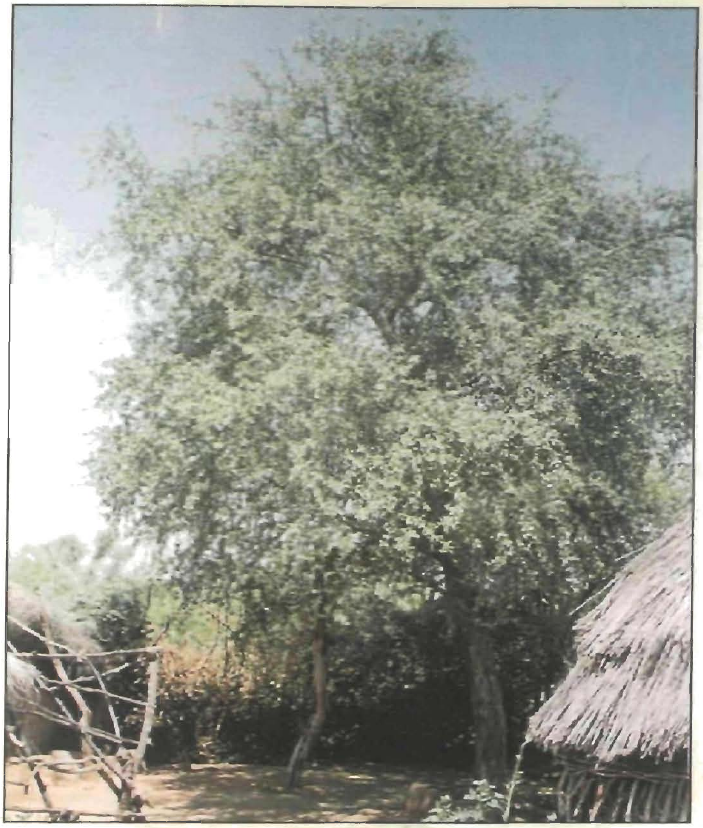

चित्र 12.5 : हिंगोटा (बेलानाईट्स रोक्सबर्गी)

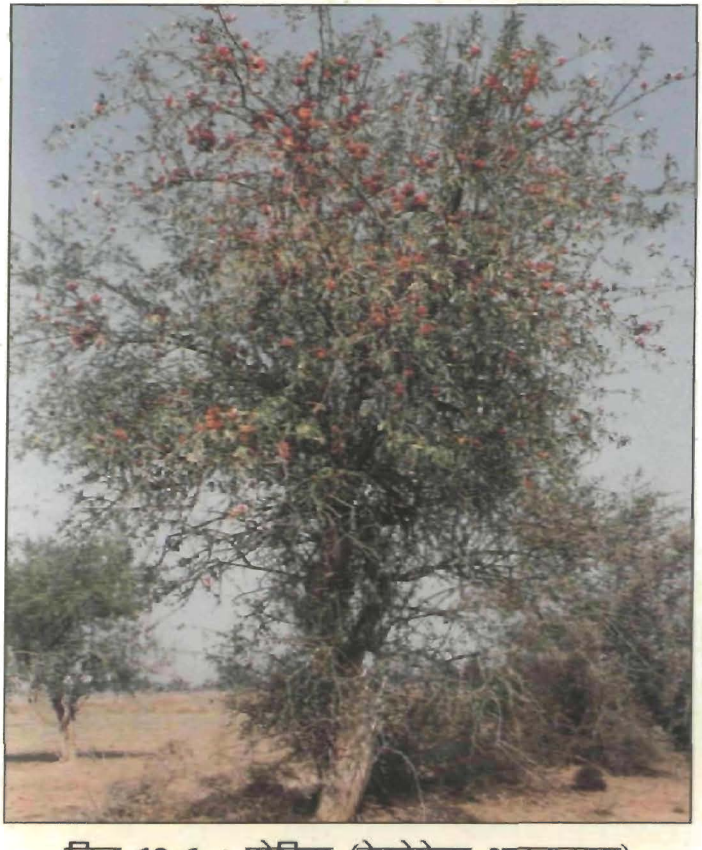

चित्र 12.6 : रोहिड़ा (टेकोमेला अनडूलाटा)

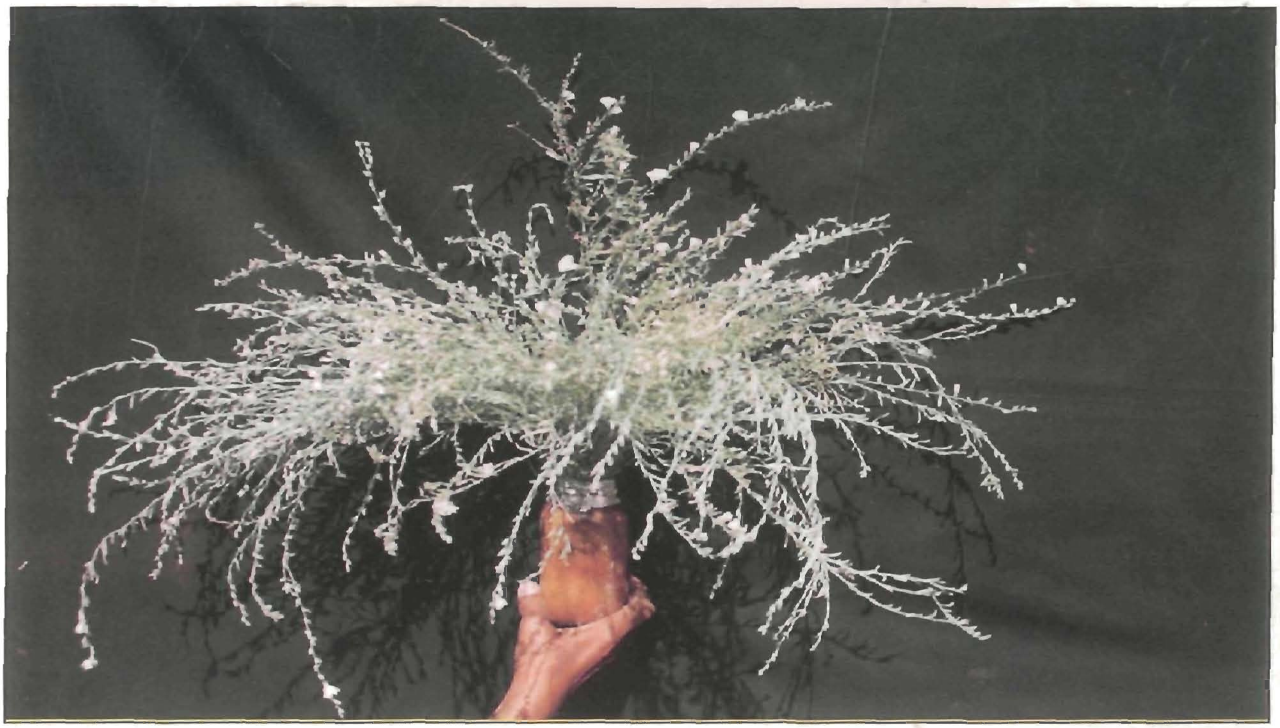

चित्र 12.7 : शंखपुष्पी (कोनवोल्वूलस)

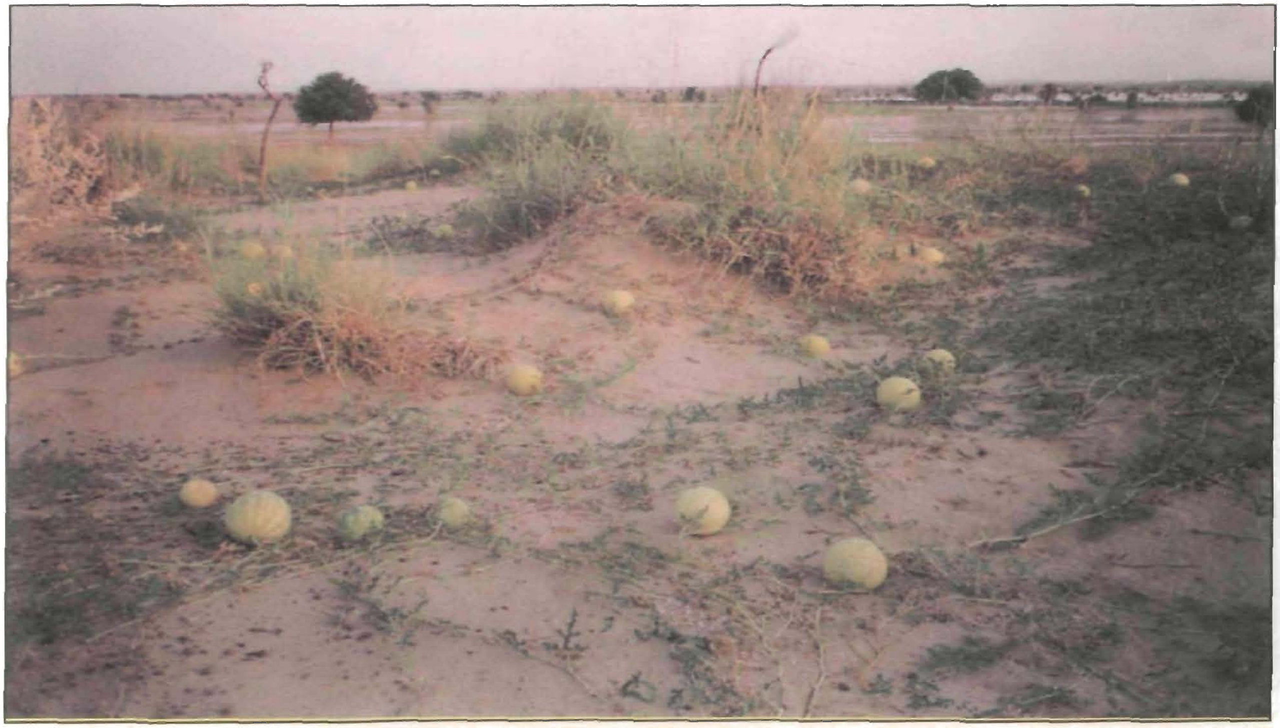

चित्र 12.8 : तुम्बा (सिटरलस कोलोकाईनथिस)

विधि : शंखपुष्पी भादवे – असौज (अगस्त – सितम्बर) के माह में खेतों में बहुतायत से मिलती है। इसे 15 दिन तक 5 किलोग्राम प्रतिदिन के हिसाब से खिलाने से ऊँट बहुत ही हृष्ट – पुष्ट हो जायेगा।

3.11.3	**सामग्री**	(i) सिणिया (हरा)	:	5 किलोग्राम

विधि : भादवे व आसौज के माह में खेतों में सिणियाँ कच्ची अवस्था में बहुत मिलता है। उसे 15 से 30 दिन तक भरपेट खिलाने से पशु हृष्ट – पुष्ट हो जायेगा।

3.12 **मच्छरों व मक्खियों को भगाना :** वर्षा ऋतु में मच्छर व मक्खियाँ पशुओं को अधिक परेशान करती हैं। इन्हें भगाने के लिये निम्न उपाय करें :

3.12.1 **सामग्री** (i) धमासा

विधि : धमासे के पौधों को उखाड़ कर आग में जलाकर धुआँ करने से मच्छर व मक्खियाँ भाग जायेगें। यह उपाय दूसरे पशुओं के लिये भी कर सकते हैं।

4 – घोड़ों की बीमारियाँ व उपचार :

4.1 **पेट का दर्द :** घोड़ों की यह मुख्य बीमारी है। उपचार के लिये निम्न उपाय करें :

4.1.1	**सामग्री**	(i) तुम्बा	:	1 किलोग्राम
		(ii) अजवाइन	:	500 ग्राम
		(iii) नमक	:	500 ग्राम

विधि : तुम्बा पकने पर पीला पड़ जाता है। पके हुए तुम्बे को बीज सहित सुखालें तथा अजवाइन के साथ उसे कूट कर बारीक कर उसमें नमक मिलाकर रख लेवें। घोड़े को पेट दर्द होने पर तुरन्त लगभग 100 ग्राम मिश्रण खिलाना चाहिये।

4.2 घोड़ो की तंदरूस्ती के लिये :

4.2.1	**सामग्री**	(i) मोंठ	:	2 किलोग्राम
		(ii) गुड़	:	500 ग्राम
		(iii) घी	:	125 ग्राम

विधि : मोंठ उबालकर उसकी गूगरी (बाफले) बना लें। उसमें गुड़ व घी मिला कर 15 – 20 दिन तक सर्दियों में खिलावें।

शब्दावली

क्र.सं.	विवरण
	वृक्ष (Tree)
1	*रोहिड़ा (टैकोमेला अन्डुलाटा)* Tecomella Undulata
2	*अर्जन (टर्मीनलिआ अर्जुना)* Terminalia Arjuna
3	*बेर (जीजीफस रोटून्डीफोलिआ)* Zizyphus Rotundifolia
4	*कालीपाड़*
5	*देशी बबूल (अकेसिया अरेबिया)* Acacia Arabia
6	*जाल (साल्वाड़ोरा)* Salvadora Spps.
7	*हिंगोटा (बेलानाईट्स रोक्सबर्गी)* Balanites Roxburghii
	झाड़ियाँ/औषधीय पौधें (Bushes/Medicinal Plants)
8	*खींप (लेप्टाड़ेनिया पायरोटैकनिका)* Leptadenia Pyrotechnica
9	*अरणा (क्लेरोडेन्ड्रम विस्कोसम)* Clerodendrum Viscosum
10	*सिणिया (क्रोटोलारीया बुरह)* Crotolaria Burhia
11	*आक (कैलोट्रोपिस प्रोसेरा)* Calotropis Procera
12	*कैर (कैपारिस ड़ेसीडुआ)* Capparis Decidua
13	*धामासा (फागोनिआ क्रीटिका)* Fagonia Cretica
14	*चामकस (कोरकोरस)* Corchorus Depressus.
15	*नाहार काँटा/सतावर् (एसपैरागस रेसीमोसस)* Asparagus Racemosus
16	*गूगल (कोमीफोरा वाईटाई)* Commiphora Wightii
17	*शंखपुष्पी (कोनवोल्वूलस)* Convolvulus Microphyllus
18	*लोकीमूला (औरोबनचे सरनुक)* Aurobanches Cernuc

19 *मेहन्दी (लासोनिया अलवा) Lawsonia Alba*

20 *गोखरू कॉटी (पेडालियम म्यूरेक्स) Pedalium Murex*

21 *नागर मोथा (साइप्रस स्केरियोसय) Cyperus Scarious*

22 *बजदन्ती (बरलेरिया एकेन्थोंइड्स) Barleria Acanthoides*

23 *भृंगी/जल भांगरो (एकलिप्ता प्रोस्ट्रेटा) Eclipta Prostrata*

24 *अशुगन्धा (विथानिआ सोमनीफेरा) Withania Somnifera*

25 *ग्रामणा घास (पैनीकम एन्टीड़ोटेल) Panicum Antidotale*

26 *चंदलाई (अमरानथस) Amaranthus Spps.*

27 *छोटी काचरी (कुकुमिस कैलोसस) Cucumis Callosus*

28 *तुम्बा (सिटरूलस कोलोकाईनथिस) Citrullus Colocynthis*

29 तम्बाकू (टोबेको) Tobacco

30 अफीम/अमल (ओपियम) Opium

मसाले (Spices)

31 *अजवाइन (अर्जेमिसिआ मारीटिमा) Arjemisia Maritima*

32 *मेथी (ट्रिगोनेला फेओनम) Trigonella Foenum-graecum*

33 धनिया (कोरीएन्डर) Coriander

34 लहसुन (गारलिक) Garlic

35 लाल मिर्च (रैड चिल्ली) Red Chilli

36 छाछ (बटर मिल्क) Butter Milk

खाद्य पदार्थ (Edibles)

37 गुड़ (जैग्री) Jaggery

38 गुड़ लाठिया (मौलेसेस) Molasses

39 देशी शक्कर/खांडसारी (मसटि सुगर) Musti Sugar

अनाज व दालें (Grains and Pulses)

40 *बाजरा (पर्लमिलेट) Pennisetum Typhoides*

41 *मोंठ (मोथबीन) Vigna Aconitifolia*

42 *ग्वार (क्लस्टरबीन) Cymopsis Teragonoloba*

43 *मूंग (ग्रीनग्राम) Phaseolus Aureus*

44 *बिनोला (कोटनसीड़) Gossypium Spps.*

तेल (Oil)

45 मीठा तेल Edible Oil

46 सरसों का तेल (मस्टर्ड़ आयल) Brassica Spps.

47 तारामिरा (रौकेट स्लाद) Eruca Sativa

48 तिल का तेल (सैसामम इन्ड़ीकम) Sesamum Indicum

मिट्‌टी व रसायनिक पदार्थ (Soils and Chemicals)

49 नीला थोथा (कॉपर सल्फेट) Copper Sulphate

50 गंधक (सल्फर) Sulphur

51 फिटकरी (एलम) Allum

52 साजी (खार) Heloxylon Recurcum

53 मुल्तानी मिट्‌टी (बैन्टोनाइट). Bentonite

54 चिकनी मिट्‌टी (क्ले) Clay

55 खरा चूना (लाईम) Lime

56 हींग Fernulla Northex

Evergreen Printers # 2434647